एक ज्ञानी की आत्मकथा

यह एक भारतीय गृहस्थ और व्यवसायी योगी की आत्मकथा है, जिन्हें तीन माह की अवधि में ही ज्ञान और जागृत अवस्था की प्राप्ति हो गई। यह आत्मकथा उनके अद्वैत गुरुओं – श्री रॉबर्ट एडम्स व रमण महर्षि तथा निसर्गदत्त महाराज की परंपरा से संबंध भी दर्शाती है। ये संवाद इस बात को भी सिद्ध करते हैं कि कैसे एक गृहस्थ और व्यवसायी व्यक्ति अपनी रोजमर्रा की व्यस्त जिंदगी में भी जाग सकता है। यह पुस्तक उनकी साधना के अनुभवों और अवस्थाओं को स्पष्ट रुप से दर्शाते हुए, जागृत–निद्रा और तुरीय अवस्था का भी उल्लेख करती है।

एड्वर्ड मूज़िका और राजीव कपूर

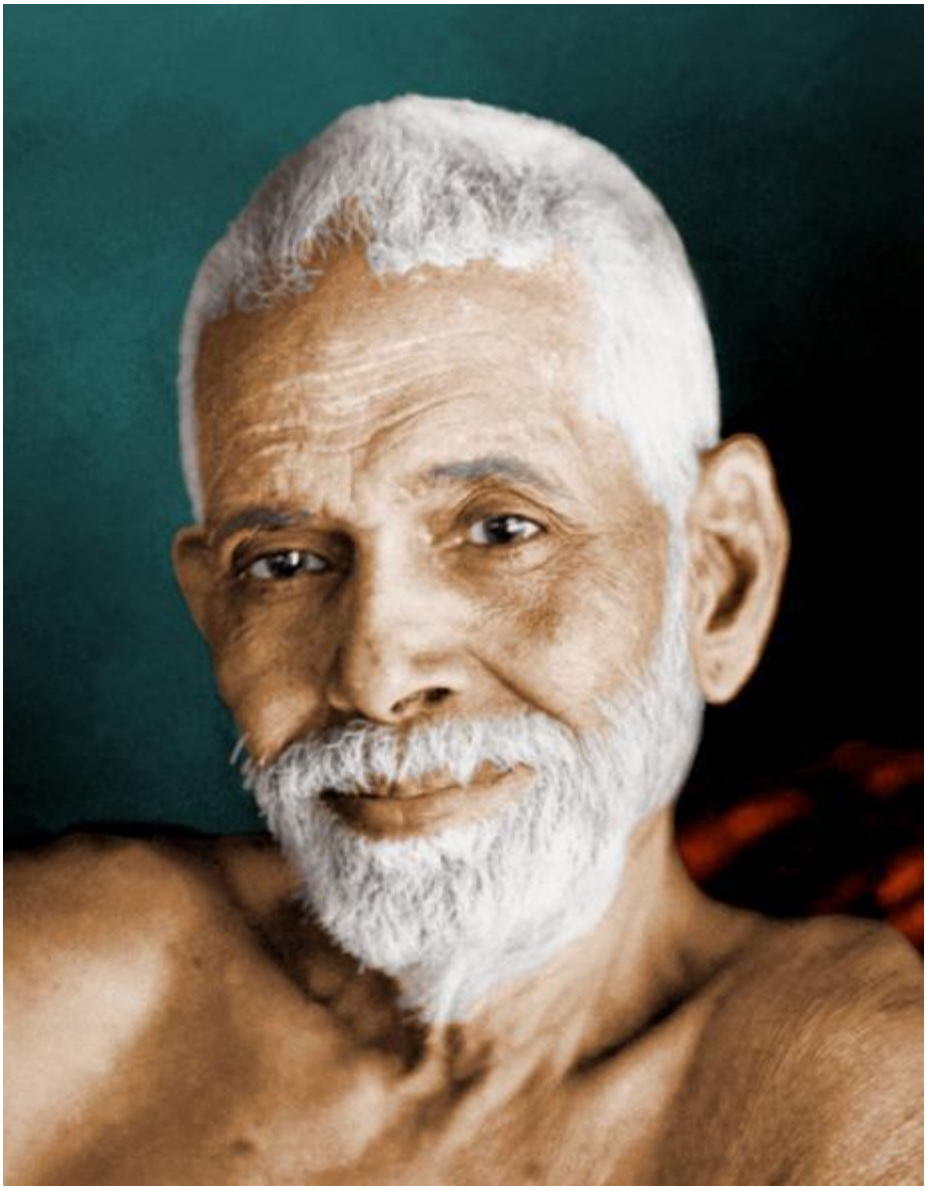

श्री रमण महर्षि

श्री निसर्गदत्त महाराज

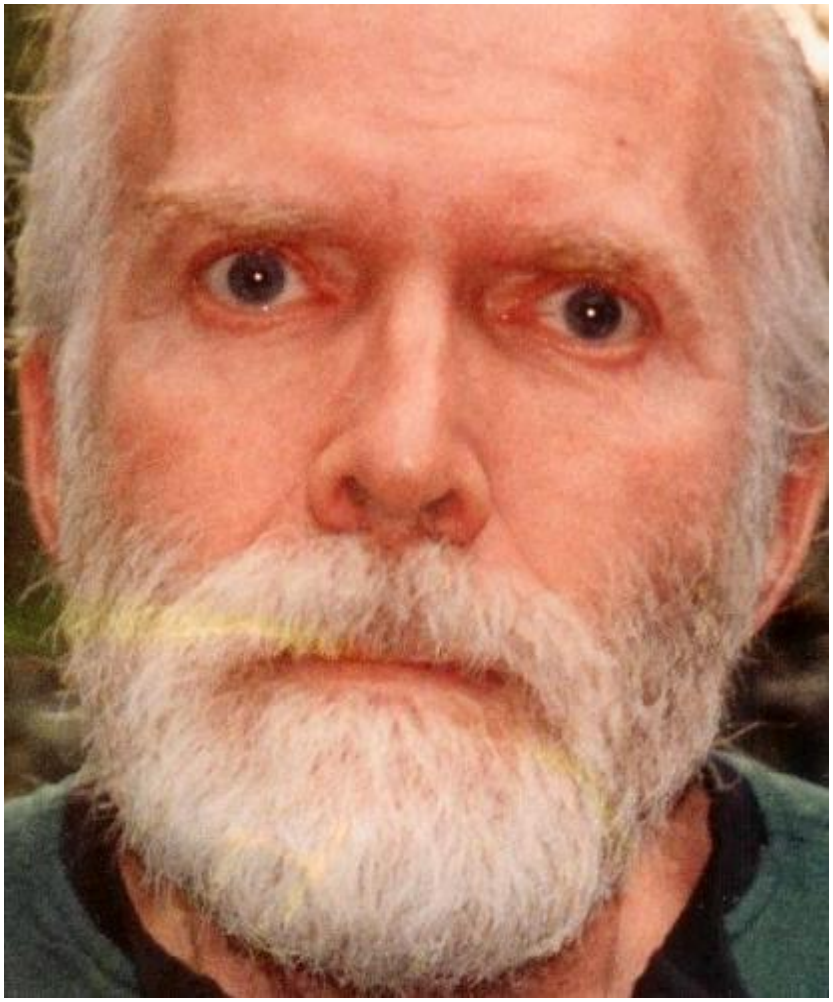

श्री रॉबर्ट एडम्स

प्रस्तावना

सन 1920 के आसपास जब परमहंस योगानन्द ने अपनी पुस्तक "एक योगी की आत्मकथा" प्रकाशित की, तब पाश्यात्य आध्यात्म आश्चर्यचकित हो गया। इस पुस्तक ने पश्चिम में सत्य के खोजियों का परिचय एक नई दुनिया से कराया, जिसका विस्तार हुआ काफी सालों बाद, ज़ेन और तिब्बतन बौद्धधर्म के आगमन पर।

योगानन्दजी की इस पुस्तक ने यौगिक ध्यान और राजयोग के मार्ग से पश्चिम को अवगत कराया। तब से कितने ही लोग क्रिया मार्ग में दीक्षित हुए और लाखों लोगों ने ज़ेन तथा बुद्ध के अन्य ध्यान मार्गों का अनुसरण किया। यह सब करने के बावजूद भी अधिकतर लोग अपने लक्ष्य से कोसों दूर हैं। ध्यान का आखिर उद्देश्य क्या है? अध्यात्म का लक्ष्य क्या है?

पिछले दस वर्षों के दौरान, पूर्वी अध्यात्मिक की तीसरी लहर ने पश्चिम को छुआ है और वह है तथाकथित अद्वैतवाद की क्रांति जिसमें अद्वैत वेदान्त और ज़ेन व तिब्बती ज़ोगचेन की शिक्षा दी गई है। रमण महर्षि और निसर्गदत्त महाराज, अद्वैत के दो महान विश्वविख्यात गुरू हैं। मेरे गुरू रॉबर्ट एडम्स इन दोनों गुरुओं के साथ थे तथा वे कुछ समय योगानन्द के साथ भी रहे।

रमण महर्षि और महाराज दोनों ने परम सुख और शांति का एक ही मार्ग बताया है जो है आत्म–निरीक्षण और अपने होने में ठहर जाना। अगर आप ध्यान से पढें तो दोनो एक ही प्रक्रिया को जरा भिन्न तरीकों से दर्शाते हैं। वे कहते हैं – "मैं हूँ" या केवल "मैं" की खोज करो और फिर उस अवस्था को संजोये रहो। इस अवस्था को परखो। उसकी सारी अभिव्यक्तियों और उसके भिन्न रुपों को परखो और उसमें ही रम जाओ। जब तुम यह बिना प्रयास कर पाओगे तो बहुत सारे अनोखे अनुभव होंगे जैसे परम शांति और परमसुख का ऐसा अनुभव जो पहले कभी न जाना था। साथ ही यह भी पता चलेगा कि यह दुनिया, जिसमें हम रहते हैं, उतनी महत्वपूर्ण नहीं जितना हम सोचते थे। वास्तव में हमारी दुनिया हमारे मन और उसके प्रभावों से बनती है। और जिसे हम चेतना कहते हैं वह हमारे विचारों के जाल से विकृत हुआ एक झूठा सच है। तब हमे पता लगता है कि हमारी जागृत अवस्था, महज हमारे दिमाग की कल्पना है। यदि हम अपने होने में रह सके, "मैं हूँ" और मेरे होने के आभास को जान लें तो हम अपने सच्चे स्वरूप को जान लेंगे जो हमारे जन्म और मृत्यु के परे है।

इस पुस्तक के संवाद इसलिए महत्वपूर्ण हैं क्योंकि ये आत्म–अनुभूति से, एक ज्ञानी के जन्म को दर्शाते हैं, जो एक योगी के जन्म के विपरीत है। योगी तो अपने "स्वयं" के स्वरूप को छोड़ विभिन्न साधना प्रक्रियाएं करता है।

राजीव कपूर मुम्बई के रहने वाले एक गृहस्थ हैं, जहाँ महाराज और रणजीत भी रहा करते थे। वे शादीशुदा हैं और अपने पिता के साथ ग्लास का व्यापार चलाते हैं। उनके दो बच्चे एक लड़का और एक लड़की है। उनका जीवन पारिवारिक और कार्यालय के कार्यों में व्यस्त रहता है।

उन्होंने दीक्षा लेने के बाद पिछले बारह वर्षों से क्रिया योग का अभ्यास किया है। यह उसी प्रकार का योग है जो योगानन्द सिखाया करते थे। वे रॉबर्ट के दूसरे गुरू थे। एक दिन उनकी क्रिया प्रक्रिया उन्हें अपने से बाहर नज़र आने लगी और तब उनके "मैं कौन हूँ" या "क्या हूँ" जानने की एक तीव्र इच्छा महसूस हुई। जैसे ही वे अन्तरमुखी हुए उन्होंने अपनी अन्दरूनी कार्यप्रणाली देखी। उन्हें सहज ही समाधि और अलौकिक, आनंदमयता का अनुभव हुआ। उस समय उनको मेरी वेबसाइट http://itisnotreal.com पर जाने का आदेश हुआ, जहॉ मैंने रॉबर्ट एडम्स, उनकी शिक्षा और उनके अपने जीवन की कहानी बताई है।

फौरन ही मुझे महसूस हुआ कि राजीव एक ऐसा व्यक्ति है जिसमें वो सारे गुण हैं जो उन्हें इस साधना के अंतिम चरण तक ले जा सकते हैं। उसमें अपने अनुभवों का अन्तःनिरीक्षण करने की और उनको स्पष्टता देने की योग्यता थी। इसके साथ वो अपनी चेतना के उतार चढ़ाव के बावजूद अपने मूल अनुभव को एकाकी रुप दे सकते थे।

वे अत्यधिक ऊर्जा और उत्साह से भरपूर थे। उनमें एक अध्यात्मिक शक्ति का प्रक्षेपण था, जो पिछले 12 वर्षों की ध्यान साधना अभ्यास से बना था। वे शालीन थे ना कि ज़िद्दी और अहंकारी। उन्होंने आदेशों का पालन किया। वे संवेदनशील और दयालु भी थे। ये सब वही गुण हैं जो स्वयं चेतना को प्रिय हैं।

उन्होंने आत्म–निरीक्षण को बड़े ही सहज और स्वाभाविक ढंग से अपना लिया और उसके बाद जो कुछ हुआ, वह एक इतिहास बन गया है। ये वही संवाद है जो 3 माह के अंतराल में, मेरे और उनके बीच हुए।

ये संवाद उनके लिए महत्वपूर्ण हैं जो अंतरयात्रा करना चाहते हैं। यह इसलिए भी महत्वपूर्ण है क्योंकि यह संवाद एक तरह का मान चित्र है जो साधना के साधन, खतरे, सीमा चिह्नों और अनुभूतियों का मार्गदर्शन कराते हैं।

पूरे अध्यात्मिक साहित्य में इस विषय का जब स्वयं ही स्वयं के ध्यान का विषय हो शायद ही कोई वर्णन मिले। ज्यादातर व्याख्यान हमें किसी चीज़ की प्रकृति की जानकारी देते है कि क्या है सत्य–मिमांसा या फिर प्रमाणों से और कई व्याख्यान हमें अभ्यास करने की क्रिया बताते हैं। लेकिन शायद ही कोई व्याख्यान उस पथ को दर्शाता है, जो पथ पर चलने के व्यक्तिगत अनुभवों से बना हो । इस कारणवश ही योगानन्दजी की पुस्तक कई लोगों के लिए एक प्रभावशाली उत्प्रेरक बन गई, उन्होंने आध्यात्मिकता को एक वास्तविकता दे दी है।

कुछ लोग जो अपनी **जागृति** के अनुभवों को बताते है, वास्तव में वे बहुत कम जानकारी देते हैं। रमण महर्षि के स्वकथित **जागृति** के अनुभव सिर्फ कुछ ही अनुच्छेदों में वर्णित हैं। कोई भी जिज्ञासु अगर उसको आदेश मानकर चले तो इस अनुभव से बहुत कम मार्गदर्शन मिलेगा। रॉबर्ट की **जागृति** का भी वर्णन बहुत कम अनुच्छेदों में दर्शाया गया है और इसको पढ़कर भी आपको उनके व्यक्तिगत अनुभवों का समझ, रमण से पहले या उनके साथ गुजारे गए समय में भी नज़र नहीं आएगी। यह संवाद काफी स्पष्टता से राजीव के हर कदम को दर्शाता है – शुरुआती समाधियों से तुरीयता तक।

निसर्गदत्त महाराज अपने अनुभवों के विषय में अपनी पुस्तक 'Self knowledge and self Realization' में जानकारी जरूर देते हैं पर बातचीत और यह जानकारी काफी हद तक अमूर्त है और समय से परे लगती है। इसकी जानकारी http://itisnotreal.com पर मिल सकती है।

ऐसी कई सारी पुस्तकें हैं, जो ये बताती हैं कि साधना कैसे की जाती है। जैसे – 'The Path of Sri **Ramana** Part I' साधु ओम और माइकल जेम्स द्वारा और 'Happiness and the Art of Being' जेम्स द्वारा, "निसर्गदत्त गीता" प्रदीप आप्टे द्वारा, ध्यान रीति पर बहुत अच्छी पुस्तके हैं। लेकिन इन सब पुस्तकों में पथ पर साधना के अनुभवों की, बिल्कुल न के बराबर जानकारी है।

जैसे–जैसे इस संवाद की परते खुलती गईं वैसे–वैसे ये स्पष्ट होता गया कि ये संवाद साधना की क्रिया को विस्तार से वर्णित करते हैं। इस संवाद में योगिओं के ऐसे सार्वलौकिक स्वनिष्ठ अनुभव हैं, जो कोई योगी ही अनुभव कर सकता है, अगर वो सिर्फ "मैं हूँ" को साधना का पात्र बनाए और और मंत्र, मंडल या शून्यता पर ध्यान न करे। फिर एक ऐसी तेज़ उड़ान की अनुभूति होती है जो योगिओं को अनंत सुख और मोक्ष की राह पर ले जाती है। ऐसे बहुत सारे नव अद्वैती शिष्य हैं जिनकी आध्यात्मिक जिज्ञासा को उनके नव अद्वैत गुरुओं ने जागृत किया है। ऐसे लोगों को शायद ये संवाद विश्वास दिलाएँगे कि **जागृति** पाने के लिए हमें आत्म संधान की गहराईओं में उतरना पड़ता है, जिनकी उनको अभी तक आदत नहीं है। ये संवाद उनका मार्गदर्शन भी करेंगे। अगर नव अद्वैत को फलित होना है और अपना विस्तार करना है तो उसे और गहराईयों में जाना होगा। अब तक तो नव अद्वैत बिल्कुल ही सतही है।

यह महत्वपूर्ण है क्योंकि आत्मिक–जिज्ञासा के तरीके में लाए गए छोटे–छोटे बदलाव ही, एक बड़े परिवर्तन की ओर ले जाते हैं। माइकल लॅगफोर्ड ने इस बात को अपनी पुस्तक 'Most Rapid and Direct means to Eternal Bliss' में लिखा है। मायकल अपना "मैं हूँ" भाव को कभी भी अलग नहीं कर पाए। उन्हें सतरह साल के आत्म संधान के अभ्यास के बाद भी कुछ खास प्रगति नहीं मिली। फिर उन्होंने अपने अभ्यास में एक छोटा–सा मोड़ दिया जिसे उन्होंने सजगता का सजगता द्वारा देखना कहा। इस तरीके में ऐसा जरूरी नहीं कि अपने "मैं हूँ" भाव को अलग कर दें। यह तरीका वैसे ही है जिसको ज़ेन बौद्ध "शिकनताज़ा" तकनीक कहते हैं। मैं आपको माइकल के "सजगता का सजगता को देखना" की तकनीक को आज़माने की तब तक सलाह न दूँगा, जब तक आप उस "मैं हूँ" को अलग न कर सकें। क्योंकि इस स्थिति को पाने से एक ऐसा चौड़ा रास्ता खुल जाता है जो हमें आसानी से अन्दर की ओर ले जाता है।

ये संवाद काफी स्पष्टता से कुछ महत्वपूर्ण चिह्नों और उतार–चढ़ावों को दर्शाते हैं जो हमें "मैं हूँ" की स्थिति पर साधना करते समय मिलते है और ये संवाद हमारे संचित ज्ञान की समझ को भी बढ़ाते हैं। यह ये भी दर्शाते हैं कि इन तरीकों के छोटे–बड़े बदलावों और स्पष्टीरकण से राजीव में अपने आप को समझने की ऐसी क्षमता आ गई जो उन्हें 12 वर्षों की अनवरत ध्यान अभ्यास से भी नहीं मिली थी।

इस संस्करण में एक अनुबंध जोड़ा गया है 'Hunting the I' जो आत्म–संधान और आत्म–निष्ठा का परिचय देता है। यह खास तौर से उन लोगों के लिये लिखा गया है जिन्होंने अब तक अंतरदर्शन का भेद नहीं जाना है। कई लोगों के लिए अंतरदर्शन स्वाभाविक नहीं बल्कि एक सीखा हुआ कौशल है। उन्हें "मैं हूँ" को कैसे ढूँढें या साधना का विषय दृष्य व दृष्टा कौन है, इन सब की कोई जानकारी नहीं है। और वह अभ्यास के समय आने वाले विचारों को या शक्तियों को या शरीर में होने वाले अनुभवों को ही अपने स्वयं को द्योतक समझते हैं।

इस पुस्तक में बहुत सारी और पुस्तकों का उल्लेख किया गया है। इनमें से काफी इन्टरनेट पर हैं। या तो गुगल से खोज करके एक आधुनिक URL पर डाउनलोड कीजिए या http://itisnotreal.com पर जा कर "RESOURCE" सेक्शन में किसी भी लिंक को ढूँढिये।

– एड मूज़िका
E-mail : satsang.online@gmail.com
Website : http://itisnotreal.com
Blog : http://itisnotreal.blogspot.com
Rajiv Kapur e-mail : rajiv108@yahoo.com

संवाद

राजीवः

एडजी, मैंने आपकी ब्लॉग पढ़ी और ऐसा लगा कि मुझे कुछ चीजों के बारे में आपको लिखना चाहिए। मैं उन्हें लिख रहा हूँ जो न कि एक महान गुरु रॉबर्ट एडम्स के शिष्य हैं अपितु वे जो सच जैसा है उसकी वैसी ही जानकारी रखते है। मुझे पता है कि इस साधना की अवस्था का सही शब्दों में वर्णन करना नामुमकिन है और आप, मैं या कोई और भी वैसा नहीं कर सकते। फिर भी मुझे एक तीव्र इच्छा होती है, आपसे इस बारे में बात करने की, सीखने की और अपने अनुभवों का आदान–प्रदान करने की। मैं आपसे इस चमत्कारी चीज जिसे हम चेतना या सच या किसी और नाम से जानते हैं, को समझना चाहता हूँ।

बीता हुआ कलः

मेरी यात्रा 12 साल पहले शुरु हुई, जब मैंने सबसे पहले क्रिया योग की दीक्षा ली। काफी खोज और दूसरे गुरुओं से कुछ और दीक्षा लेने के बाद, मुझे आखिरकार वो गुरु मिल गया जिसे मेरे मन ने स्वीकारा। वो एक पारंपारिक और साथ ही प्रसन्नचित्त गुरु थे। उन्होंने मुझे खेचरी मुद्रा और कई उच्च क्रियाओं की दीक्षा दी।

चेतना के उच्च स्तरों का अनुभव करने के लिए खेचरी मुद्रा बहुत ही महत्वपूर्ण है। अपने क्रिया के प्रयोगों के दौरान मुझे कई प्रकार के अनुभव हुए – जैसे शरीर के बाहर जाने के अनुभव, उज्ज्वल सपने, अधिक सजगता का होना और केवली कुम्भक (सांस का हृदय केंद्र पर स्वतः रुकना) जो शरीर के कण कण में असीम आनंद भर देता है।

26 अगस्त 2003 को मुझे एक केवली समाधि का अनुभव हुआ, जिससे एक ऐसी उर्जा की लहर उठी, जो मेरी रीढ़ की हड्डी के आधार केंद्र से 'सहस्रार' तक पहुंची और मेरे हृदय केंद्र पर आकर रुक गई। मुझे सांस का एहसास नहीं हुआ, समय रूक सा गया और मैं एक असीम आनंद में बह गया। इस स्थिति में मैं कुछ दिन तक रहा और मैंने अपने चारों तरफ हर चीज़ से एकात्मकता का अनुभव किया।

बीच की स्थितिः

उपर्युक्त उपलब्धि अपने आप में ही एक सबसे बडी बाधा बन गई, क्योंकि मैंने इस अनुभव को बार–बार दोहराने की दिलो जान से कोशिश की। मगर हर बार मुझे असफलता ही मिली। यह महसूस हुआ कि शायद मेरी सबसे बडी बाधा मेरी अपनी मान्यताएं और विश्वास है। इसके बाद मैं अपनी क्रियाएं नहीं कर सका। वे तरीके, वे शिक्षाएं मुझे सच के सही रुप को अनुभव करने में एक बाधा बन गए थे। मेरा मन उस साधना में बहने के बजाए हमेशा कहीं न कहीं पहुँचने की कोशिश में लगा रहता था।

मैंने फिर सिर्फ अपने अन्दर और बाहर चल रही प्रक्रियाओं पर ध्यान देने का निश्चय किया। मैंने जान लिया था कि परमानन्द और विचार शून्यता की अवस्था, क्रिया न करने के बावजूद भी लौट आती है। यह सिर्फ "देखने" का ही नतीजा था कि ध्यानयुक्त होने के बाद, ईश्वर, आशीर्वाद, विमुक्ति और ऐसी कई धारणाएं स्वयं ही गायब हो गई।

वर्तमानः

आजकल मेरी यही कोशिश रहती है कि मैं अपने उस हर विचार, हर भावना का साक्ष्य करूं, जो मेरे मन में उजागर होते रहते हैं। मुझे अब पता है कि जैसे–जैसे मैं पूरा ध्यान अपने आस–पास होने वाली हर चीज़ पर लगाता हूँ वैसे–वैसे मेरी जागरुकता बढ़ती है। परमानन्द और परमसुख की झलकें मुझे अपने चारों ओर दिखाई देती हैं। मेरी स्थिति नशे में चूर उस इन्सान जैसी है, जिसमें एक तरह की तीव्र एकाग्रता भी है। ऐसा लगता है कि मैं एक असीम चैतन्य के नशे में मदहोश हो गया हूँ। मैं किसी उपलब्धि या लाभ की कामना नहीं करता। मैं तो बस "वह" हूँ। यह ही शायद "होना" है। मैं हर चीज़ को स्पष्ट देखता हूँ। मेरे आसपास के रंग कुछ ज्यादा ही रंगीले, चमकीले और उज्ज्वल हैं। और ऐसा लगता है कि यह मेरे आसपास नृत्य कर रहे हैं। उस झलक की अवस्था में विचार बहुत कम होते हैं। अगर विचार उठते भी हैं तो मैं उन्हें बड़ी स्पष्टता से आते–जाते देखता हूँ। किसी उपलब्धि को पाने की या कहीं जाने की इच्छा ही नहीं रही। आपसपास की हर चीज़ इतनी चमत्कारी और विशुद्ध लगती है कि जैसे मैं इन चीजों को पहली बार ही देख रहा हूँ। उस स्थिति में किसी ईश्वर या गुरु की जरुरत नहीं लगती। सब कुछ पिघल सा जाता है।

प्रश्नः

एडजी, मैं इस अवस्था को "झलक" कहता हूँ क्योंकि यह लगातार नहीं रहती है। यह अवस्था ज्यादातर शाम को दो या तीन घण्टे तक रहती है। मैं यह नहीं कह सकता कि मैं इसे ला सकता हूँ, क्योंकि वह तो स्वयं ही आती है और स्वयं ही गायब भी हो जाती है। शायद यह शाम को इसलिए होता है, क्योंकि उस समय मुझे काम की कोई चिंता नहीं होती या शायद इसका कोई और कारण है। मुझे यह ऑफिस के समय में भी हुआ है, लेकिन बहुत कम बार। कई बार तो मुझे इसमें हमेशा के लिए रहने की तीव्र इच्छा होती है जो मेरे लिए एक भारी रुकावट भी बन सकती है। कृपया इस बारे में अपने विचार और सुझाव मुझे लिखें। मुझे आपके मार्गदर्शन की सख़्त जरुरत है। मैंने इस अनुभव को जितना शब्दों में लिखा जा सके, उतना लिख दिया है।

एडजीः

तुम जो अनुभव कर रहे हो, वह तुम्हारी साधना की गहनता और तीव्रता के कारण हो रहा है।

अगर तुम इस स्थिति में हमेशा के लिए लीन हो जाओ तो वह एक प्रकार की समाधि हो जाएगी। अगर तुम अपनी साधना को औपचारिकता से निभाओ और सुबह 45 मिनट पद्मासन में बैठो तो तुम इस स्थिति को जब भी चाहो ला सकोगे। शायद ही नहीं, अधिकतर यह समय के साथ गायब भी हो जाती है। कृष्णमूर्ति और ऐसे कई योगिओं के लिए यह एक आखिरी स्थिति है। क्यों न तुम इसके साथ जाकर देखो कि यह तुम्हें कहाँ ले जाती है?

लेकिन यह, क्लासिक अद्वैत फिर भी नहीं माना जाएगा। अद्वैत में हम अपना ध्यान सब पर नहीं रखते बल्कि सिर्फ "मैं" के एहसास या "मैं" पर लगाते हैं।

फिर भी, यह अभी मत करना। वही करना, जो तुम अब तक करते आ रहे हो और उसके साथ–साथ एक 45 मिनट की साधना का सत्र करो, जिसमें तुम दीवार की तरफ मुँह करके बैठो। अपनी आँखें बंद या आधी खुली रखना। जितना हो सके उतनी दृढ़ता से बैठना।

राजीव (एक या दो दिन बाद):

गुरूजी, विषयहीन ध्यान के शुरुआती समय के बाद, चेतना स्वयं ही अन्दर की ओर घूम गई है। कुछ क्रिया प्राणायामों को करने के बाद शरीर का होना महसूस ही नहीं होता है। शरीर की चेतना मानो कहीं अंदर एक मृत शरीर जैसी महसूस होती है, जैसे शरीर तो है मगर चेतना खिसक गई है। मैं विचारों के प्रति सजग हो गया हूँ कि वे कैसे आते हैं और कैसे चले जाते हैं।

कई बार साक्षी होने पर विचार नहीं होते और मैं उस स्थिति में पहुँच जाता हूँ जहाँ पर सिर्फ शून्यता या खालीपन है। उस समय मैं अपनी तीसरी ऑख पर एक विस्तार सा महसूस करता हूँ। शून्यता इसी तरह आती है कि कोई विषय वस्तु रहती ही नहीं, सिर्फ शून्यता रहती है। मुझे साक्षी की अवस्था के दौरान ऐसा भी लगता है कि एक दूसरा, साक्षी इस अवस्था को देख रहा है। जैसे ही विचारों से तादात्म्य होने लगता है, वह दूसरा साक्षी जो इस प्रक्रिया का ध्यान रख रहा है, फिर से ध्यान को साक्षी की ओर ले आता है। यह व्यक्त करना काफी मुश्किल है, लेकिन यह ऐसा ही कुछ है। क्या "वही" है जिसका आपने उल्लेख किया है?

वास्तव में, शून्यता का समय बहुत ही छोटा है, मन हस्तक्षेप करता है और इसका साक्षी बनने के बाद, मैं एक विचारहीन अवस्था में पहुँच जाता हूँ। इस अवस्था में मैं तब तक रहता हूँ जब तक कि मन फिर से दखल न दे। शरीर की चेतना खोने के बाद के सारे समय में एक और साक्षी रहता है, जो यह देखता है कि "साक्षीत्व" फल रहा है या नहीं।

एडजीः

हाँ, यह ही सही अभिप्राय है। तुम ठीक समझ रहे हो। बाद में, एक ही साक्षी बचेगा। उन दो साक्षियों में से एक साक्षी, और कुछ नहीं बस तुम्हारा मन है, जो अंतःनिरीक्षण की प्रक्रिया पर टिप्पणी कर रहा है।

इस समय तुम "मैं हूँ" के अंतःनिरीक्षण का प्रयास न करके सिर्फ साक्षी का साक्षी बनने का प्रयास करो। देखने वाले को देखो।

राजीवः

मुझे आपको यह भी बताना था कि कल ध्यान के बाद मैं पूरा दिन झलक की अवस्था में रहा। मैंने इस अवस्था को अपनी पहली मेल में वर्णित किया है। आप कहते हैं कि आगे जाने के लिए अभी बहुत शेष है। लेकिन अपने अन्दर और बाहर मुझे यही लगता है कि यही वह हैं। अपने आसपास के हर जड़ और चेतन पदार्थ से एक बढ़ता हुआ संबंध महसूस होता है। आपने कहा यह एक प्रकार की समाधि है। आपसे पहले के मेरे क्रिया गुरु ने इसे सर्व विकल्प समाधि कहा था। लेकिन फिर ये सब भी सिर्फ धारणाएं ही है। आप इसे किस तरह की समाधि कहेंगे?

एडजीः

तुम जिसको "झलक" कहते हो, वह विचार प्रक्रिया का न होना है। अनवरत बालते रहने वाले मन से बेखबर रहते हुए भी, तुम पूरी तरह से जागृत हो। लेकिन इस झलक के दौरान तुम्हें यह पता नहीं होता कि दुनिया में बाहर जो कुछ भी हो रहा है वह सिर्फ तुम्हारे मन द्वारा निर्मित है और वास्तव में वह है ही नहीं।

मेरे पास समाधियों के अलग–अलग नाम तो नहीं है। जैसा तुम कहते हो, वे सिर्फ नाम हैं और महत्वपूर्ण नहीं है। यहाँ तक कि समाधियों के अलग–अलग अनुभव भी महत्वपूर्ण नहीं है।

वास्तव में कुछ भी महत्वपूर्ण नहीं है सिर्फ यह जरुरी है कि हम एक ऐसे इंसान बनें जो दयालु और न्यायप्रिय हो, जो अपनी जिन्दगी दूसरों की भौतिक और मानसिक तौर से मदद करके गुजारे। बाकी सब कुछ कोरा फलसफा और भ्रम है।

तुम अपनी आत्मिक खोज को समाप्त करने के बहुत करीब हो। इसलिए मैं तुमसे आग्रह करता हूँ कि तुम अपनी समझ और शांति को बढ़ाओ और दूसरों का ध्यान रखो।

राजीवः

गुरूजी, हम वास्तव में कौन हैं और सत्य की समझ क्या है, के बारे में आपकी यात्रा के विस्तृत वर्णन को मैंने आपके ब्लॉग पर पढ़ा। जब मैंने पहली बार यह पढ़ा, मेरी आँखें नम हो गईं। बाद में तो मैं इसे बार–बार पढ़ रहा हूँ, और अपनी थोड़ी सी समझ के अनुसार इसको ठीक से समझने की कोशिश कर रहा हूँ। इसे अब तक न तो पूरा ही पढ़ पाया हूँ न ही पूरे ध्यान से समझ पाया हूँ। मैं जानता हूँ कि मैं आपके अनुभव को पूरा नहीं जान सकता क्योंकि चाहे आपने अपने अनुभवों का कितनी ही सुन्दरता से वर्णन किया हो, वह शब्दों के बन्धन में नहीं बंध सकते। यह सुन्दर शब्द उस वास्तविक अनुभव को नहीं दर्शाते, यह तो मात्र उस अनुभव का एक प्रतिबिम्ब है, जिनका हम पर एक सीमित प्रभाव ही होता है। यदि पढ़नेवाला व्यक्ति एक ऐसा साधक है जो जागरुक है और इन दिमागी प्रक्रियाओं के परे देख सकता है, तो ही वह पूरा समझ सकता है।

मुझे यह भी दावे के साथ पता है कि ज़्यादातर साधक जो इस पथ में आपके साथ हैं वे जानते हैं कि आप, हमें प्रेरित करना चाह रहें है कि हम प्रयत्न करें। क्योंकि हर व्यक्ति को स्वयं ही "भ्रम" के सत्य को जानकर, सत्य तक पहुँचना पड़ेगा। महाशय! मेरे पास कुछ सवाल है। सिर्फ आप ही मेरा मार्गदर्शन करने के काबिल है। मैं आप पर और आपके ज्ञान पर पूरी तरह समर्पित हूँ। मैं विनम्रता से, आपसे परम सच के बारे में जिनका आपने अपने ब्लॉग में वर्णन किया है, निम्नलिखित सवाल पूछना चाहता हूँः–

एडजी, मुझे समझ में नहीं आया आप अन्दर और बाहर की वस्तुओं को कैसे अवास्तविक कहते है। गुरूजी, मेरे लिए यह जानना बहुत जरूरी है है। जड़ और चेतन वस्तुएँ बहुत सुन्दर और आल्हाददायक लगती है और मैं उनसे संबंधित हो जाता हूँ। मेरा मतलब है कि सारे लोग, गाड़ियाँ, पशु–पक्षी, पहाड़ और घाटी, मुझे इन सब से एकात्मता लगती है और इसलिए मै इन्हें वास्तविक समझता हूँ। सत्य ही आत्म निरीक्षण यह बता देता है कि विचार और भावनाएँ जो आती जाती रहती है वह वास्तविक 'मैं' नहीं हूँ। अब जैसे ही विचार उठते हैं, मैं उन्हें पकड़ लेता हूँ।

गुरूजी, मेरा प्रश्न हैः

(अ) क्या ये वस्तुएँ – दोनों बाहरी और "मैं विचार" "अवास्तविक" हैं क्योंकि ये मुझे अब परेशान नहीं करते? मैंने यह समझा है कि यह अपने आप आते–जाते रहेंगे, लेकिन इनका मुझसे कुछ लेना–देना नहीं है। लेकिन फिर भी मैं इन्हें देख सकता हूँ और महसूस कर सकता हूँ और इसलिए इस संदर्भ में क्या वे वास्तविक नहीं हैं?

(ब) जैसे–जेसे "मैं विचार" कम और कम होता जाता है सजगता और पूर्णता उतनी ही बढ़ती जाती है। इस अर्थ में मैंने यह जाना है कि पूर्ण सत्य मेरे साथ हमेशा रहता है। आल्हाददायक जागृकता मेरे अन्दर और बाहर की हर वस्तु पर छाई रहती है। तो क्या आप इस मायने में कहते हैं कि ये वस्तुएँ वास्तविक नहीं हैं और सिर्फ एक भ्रम हैं?

क्या यह परमानन्दी जागरूकता वही है, जिसे आप शून्यता कहते हैं? वह अन्दर और बाहर सर्वव्यापी है, लेकिन यह आश्चर्यजनक सुन्दरता से भरी है तो क्या इस मायने में यह फिर भी वास्तविक है? है ना? मेरा मतलब है मैं इस जागरुकता को समझता हूँ, वह शून्यता, वह हर्ष अपने अन्दर और बाहर, जिसकी वजह से बाकी कुछ भी मायने नहीं रखता। मेरे विचार, बाहरी वस्तुएँ, पैसा, ताकत कुछ भी। लेकिन फिर भी इनका अस्तित्व है। क्या ऐसा नहीं है? मैं इनसे परेशान नहीं होता अब इनका मुझ पर प्रभाव नही होता। मैं कई बार उन्हें देख–देख कर मुस्कुराता हूँ, जब वे मुझसे अपनी पहचान माँगते है – लेकिन इनका फिर भी कोई अस्तित्व तो है ही।

एडजीः

यह बहुत बढ़िया है कि तुम्हें चेतना से प्रेम हो गया है। इसका मतलब है कि अंततः चेतना के दायरे से बाहर जाने के लिए तुम्हें बहुत तीव्र गति से चलना होगा।

वह एकात्मता वास्तविक नहीं है। तुम सिर्फ चेतना की पूर्णता को देख रहे हो। लेकिन उसे कौन देख रहा है? "वह" चेतना के दायरे के बाहर है और चेतना के पहले से भी है। मुझे तुम्हारी अंतिम समझ तक पहुँचने की बड़ी ऊँची आशा है। क्या मैंने तुम्हें निसर्गदत्त गीता भेजी है? इस वक्त यह तुम्हारे पढ़ने के लिए एक बेहतरीन किताब है। वह किताब जो मैंने पहले बताई थी – 'Prior to Consciousness' या "चेतना से पहले" बहुत प्रतीकों को दर्शाती हैं जबकि निसर्गदत्त गीता, तुम जहाँ हो उस स्थिति के लिए बिल्कुल सही है।

यह उस व्यक्ति ने लिखी है जिसने निसर्गदत्त की दस किताबों में से ऐसे सब वाक्य निकाले जो "मैं हूँ" "मेरा होना" या "उपस्थिति" के बारे में है। उसको पढ़ने के बाद आपकी जागरूकता स्वतः ही "मैं हूँ" में आ जाती है। निसर्गदत्त यह भी कहते हैं कि कैसे यह दोनों – "मैं हूँ" और "मैं विचार" अस्थिर और अवास्तविक है और आखिरकार केवल दिमागी रचनाएं हैं।

राजीवः

यह चेतना और शून्यता भी मैं नहीं हूँ। अरे वाह! अब कुछ समझ रहा है। क्या आपका मतलब है कि "मैं" या "विषय" केवल एक वस्तु है? वो जो मैं–विचार के एहसास का साक्षी है वह भी एक वस्तु है? वाह! तो यह जागरूकता भी मैं नहीं हूँ। क्या मैं इस आल्हादित सजगता का गवाह बनूँ और उसका निरीक्षण करूँ? क्या मुझे इस साक्षी की खोज करनी होगी। क्या सिर्फ निरीक्षण करने से यह संभव हो जाएगा?

एडजीः

सिर्फ इसका ध्यान रखो कि हर अनुभव अस्थाई, अवास्तविक और अप्रासंगिक है। चेतना अस्थाई और अवास्तविक है। बदलाव और नशवरता उसे नहीं छू सकतीं जो चेतना के दायरे से बाहर है। और उसे यह मन या चेतना कभी भी जान नहीं सकते। तुम सिर्फ "वही" हो सकते हो।

तुम्हारी सुन्दर दुनिया तुम्हारे शरीर के मरने के बाद गायब हो जाएगी। लेकिन तुम एक अजन्मे दृष्टा की तरह, हमेशा अछूते रहोगे।

तुम्हारे पास अभी, चेतना का आशीर्वाद है। वह तुम्हारे लिए सब कुछ उद्घाटित कर रही है। निसर्गदत्त गीता तुम्हें अपनी मंज़िल तक पूरी तरह से पहुँचा सकती है। जब तक चेतना है, उसके प्रेम का परमआनन्द लेते रहो।

राजीवः

गुरूजी, आप कहते है "जब तक चेतना है उसके प्रेम का आनन्द लेते रहो" क्या यह भी वास्तविक नहीं है? अब तक ऐसा लगता है कि "यही सत्य"। एक इन्सान इस आल्हादित क्षण से ज्यादा और क्या मांग सकता है, जिन्दगी से? मैं आजकल इस स्थिति में ही अधिकतः मदहोश रहता हूँ। यह झलक मैं बन गई

है। अब विचारों से एकात्मता जागृत सिर्फ 2–3 घंटे रहती है और तब भी यह मैं ही निरीक्षण कर रहा होता हूँ।

मुझे याद है जब मैंने आपसे पहली बार वार्तालाप किया था। तब इससे विपरीत स्थिति होती थी। आप कितने सही थे, प्रभु! आप मुझे यहाँ तक लाए हो, प्रभु! यह सजगता और चेतना, हर मौजूद चीज़ को अपने में समा लेती है – मेरे ऊपर, नीचे, अन्दर और बाहर भी, मैं नम्रतापूर्वक नमन करता हूँ, गुरूजी। आप कहते हैं "यह भी वास्तविक नहीं है" इसलिए मैं अपने आपको याद दिलाता हूँ कि इसमें मुझे "मैं" छोड़ देना है। यह मैं नहीं हूँ (अब तक बुद्धिपरक ही है) इसलिए मैं अपने आपको चेतावनी देता हूँ कि क्या हुआ अगर यह अवस्था हमेशा नहीं रहेगी? क्या मैं कभी भी इस भव्य अनुभव के लायक था? वह आता जाता रहेगा, कोई बात नहीं। मैं सदा ही इसको देखता रहूँगा। एक संत ने मुझसे कहा, "जब तक चेतना है, उसके प्रेम का आनंद लेते रहो" ऐसा ही हो। चेतना को जहाँ तक मेरा मार्गदर्शन करना है, वहाँ तक करे।

एडजीः

बिल्कुल सही!

राजीवः

गुरूजी, शुरूआती "मैं–विचार" या फिर विचार के साक्षीत्व के बाद, एक चेतना की धारा कुछ समय तक बनी रहती है, जब तक कि कुछ विचार आकर थोड़ी खलबली न मचा दें। यह शून्यता है, जिसे मैंने पहले 'मैं' कहा था। इसे मैंने पहले विषय की पहचान दी थी और विचारों को वस्तु की। लेकिन अब मैं स्पष्टता से यह देख सकता हूँ कि चेतना भी अपने आप में वस्तु है और मैं इससे परे हूँ।

एडजीः

यह बहुत महत्वपूर्ण जानकारी है। है ना? चेतना तुम नही हो। यह शून्यता भी तुम नहीं हों, यहाँ तक कि यह शून्यता, चेतना भी नहीं है। आत्मिक खोज और "मैं" या "मैं हूँ" पर ध्यान की शुद्ध गति के बाद ही शून्यता चेतना है ऐसा जान पड़ता है। असली शून्यता एक स्वतः प्रकाशित शून्यता है जिसमें सब कुछ समाविष्ट हो जाता है और जो चेतना का सार है, सब कुछ है। लेकिन तुम शून्यता से भी अधिक शुद्ध हो। तुम शून्यता की पहुँच के बाहर हो।

राजीवः

जैसे ही मैं चेतना का साक्षी बनता हूँ वैसे ही कई बार बहुत विचार, जो एकदम असंगत होते हैं, आकर मेरी उस अवस्था में खलल पैदा कर देते हैं। खासकर जब मैं सिर्फ चेतना को ही देख रहा होता हूँ, तब यह विचार आता है – "अरे, मैं इसे देख रहा हूँ" और मैं चेतना और उस विचार दोनों का साक्षी बन जाता हूँ। यह सिर्फ एक अर्थहीन विचार होता है जो आता और जाता रहता है। चेतना और विचार दोनों का "साक्षी" एक होता है। गुरूजी, मेरा सवाल हैः

(1) क्या करूँ मैं इन विचारों का जो अपने आप ही आ जाते हैं? उनके प्रारंभ को साक्षी–भाव से देखता हूँ तो वे गायब हो जाते हैं पर फिर आकर अपनी चेतना के साक्षी होने में बाधा पहुँचाते हैं। वैसे कई बार मैं विचारों और चेतना का एक साथ साक्षी हो पाता हूँ। क्या ये निरर्थक विचार पूरी तरह जाएंगे या नहीं?

एडजीः

विचारों की चिन्ता मत करो। अब वे तुम्हें ज्यादा देर परेशान नहीं कर सकेंगे। सिर्फ अपने होने पर ध्यान केन्द्रित करो या फिर उस शून्य पर, जिसमें सबकुछ समाहित है और जो चैतन्य से आपूरित है।

राजीवः

चैतन्य में पूरी तरह से केन्दिव्र होने पर विचार धूमिल हो जाते हैं, पर फिर आ जाते हैं, जब मैं साक्षी होता हूँ। क्या ये निरर्थक विचार कभी हमेशा के लिए गायब भी होंगे?

एडजीः

विचारों में अब कोई दम नहीं रहा। उनकी उपेक्षा करो। वे सारहीन व निरर्थक हैं। वे कभी–कभी तो आएंगे ही जब तक तुम्हारा मन और शरीर है। मन एक रेडियो एंटेना की तरह काम करता है और शून्य से विचारों को उठा लेता है। उनका तुमसे कोई सम्बन्ध नहीं है।

राजीवः

मैंने गौर किया है कि साक्षीत्व जागृत अवस्था पर भी पूरी तरह से छा जाता है। अपना रोजमर्रा का ऑफिस काम करते, घूमते समय जब मैं पूरी तरह उस कार्य में मग्न नहीं होता हूँ, चेतना की धारा और विचारों के आने जाने के साक्षी को देख सकता हूँ। इस साक्षी या विषय दोनों का एक ही समय पर साथ–साथ साक्ष्य होता है। अब जबकि विचार शक्तिहीन हो गया हैं और कई बार पहचाना भी नहीं जाता हैं। लेकिन फिर भी, विचारों का अस्तित्व रहता ही है।

(2) मैं इस विषय को, इन दोनों के साक्षी को ढूँढ़ने की कोशिश करता हूँ कि कौन है, लेकिन मैं इसे कहीं भी ढूँढ़ नहीं पाता हूँ – मेरा मतलब है की साक्षी (जो पीछे है) नहीं मिल पाता है। जिस क्षण मैं साक्षी को ढूँढ़ पाता हूँ वह (विषय) अपना अस्तित्व खो बैठता है और वह एक दूसरी वस्तु ही बन जाता है। कई बार मुझे लगता है कि वह "तीसरे नेत्र" पर सजगता या चेतना का साक्षीत्व रहा है, और कई बार मुझे लगता है कि वह हृदय केन्द्र पर है। आपने कहा "देखने वाले को देखो" लेकिन मुझे कहीं नहीं दिखता है।

एडजीः

सही है, तुम देखने वाले को नहीं देख सकते तो तुम इससे क्या तात्पर्य निकाल सकते हो?

वह "देखनेवाला" इस दुनिया या किसी और दुनिया में नहीं मिलेगा। तुम पूरी तरह इस अस्तित्व से बिल्कुल परे हो। तुम चेतना में नहीं मिलते। चेतना में एक इकाई भी तुम नहीं हो। इस दुनिया का तुमसे कोई सरोकार नहीं है।

राजीवः

मैंने गीता के सात–आठ पद पढ़े हैं। मुझे समझ में आते हैं पर मैं वे बहुत धीरे–धीरे पढ़ पाता हूँ, शायद एक या दो पद ही एक दिन में।

एडजीः

ऐसा होना बिल्कुल सही है। पुरातन समय से लोगों के मन में उठने वाले बड़े–बड़े प्रश्नों को तुम अब सुलझा पा रहे हो। चैतन्य–ईश्वर–तुम्हारे सामने सबकुछ उज़ागर कर रहा है।

तुम्हें जल्दबाजी करने की कोई जरूरत नहीं है। जब मैंने पहली बार निसर्गदत्त की 'Prior to Consciousess' ("चेतना से पहले") पढ़ी थी – मैं ज्यादा से ज्यादा एक दिन में, सिर्फ एक ही पन्ना पढ़ सकता था, कई बार तो सिर्फ एक पैराग्राफ ही, हर वाक्य एक हथौड़ी की तरह मेरे दिमाग पर प्रभाव करता था। दूसरी बार पढ़ने पर भी ऐसा होता था। जहां तुम अभी हो, हजारों में से एक ने भी इस स्थिति को नहीं छुआ है। गति की चिन्ता मत करो। तुम मार्ग पर सही तरीके से चल रहे हो।

राजीवः

पिछली रात मुझे एक बहुत ही अनोखा अनुभव हुआ और मुझे आपसे पूछना है कि मेरी समझ इसके बारे में सही है या नहीं। कल के ध्यान (जिसका मैंने आपको एक और ई–मेल भेजा है) में मुझे ऐसा अनुभव हुआ मानो मैं जागृत अवस्था से स्वप्न अवस्था में आ–जा रहा हूँ। तो मैंने सोचा कि मैं रात को सोते समय ही साधना करूँ और जो वास्तव में हो रहा है उसे देखने की कोशिश करूँ। तो मैंने अपना पूरा ध्यान शून्यता पर लगाया, विचारों को दूर रखा और तनाव–रहित हो गया। मैंने निश्चय किया कि जहाँ तक हो सके, अपना ध्यान शून्यता पर केन्द्रित करूँगा, जब तक मैं सो ही न जाऊँ।

अगले ही क्षण, मैंने अनुभव किया कि मैं सपना देख रहा हूँ क्योंकि मैं कुछ लोगों से बात कर रहा था। लेकिन मैं यह अच्छी तरह जानता था कि मैं सपना देख रहा हूँ क्योंकि मैं अपनी इच्छा शक्ति से अपने आपको जागृत अवस्था में ले आया था। मैं स्वप्न अवस्था में पुनः गया। इस बार मेरा बेटा कमरे में चिल्ला रहा था। मुझे पता था, यह भी एक सपना है, और मैं वास्तव में जैसा सपना चाहूँ वैसा देख सकता था। अब इस सपने में मैं

काफी उत्तेजित महसूस कर रहा था और मैंने सोचा कि मैं आपको कल सुबह इस बारे में जरूर लिखूंगा। फिर मैंने सोचा क्यों न मैं इस स्वप्न अवस्था में विचार द्वारा आपसे मिलूँ, क्योंकि इस अवस्था में मैं तो कहीं भी जा सकता हूँ। लेकिन फिर किसी चीज़ ने मुझे रोक लिया। मैंने इस ओर ज़्यादा न बढ़ने का निश्चय कर लिया।

शायद किसी भय ने मुझे रोका था। मैं कैसे इतना आश्वस्त था कि मैं सपना नहीं देख रहा था और मुझो इस स्वप्न अवस्था का बोध था? क्योंकि मैं स्वप्न अवस्था से जागृत अवस्था में जब चाहे जा सकता था और उस रात को ही मैंने अपने बेटे के साथ खेलते हुए भागदौड़ की थी और मैं काफी थक गया था। वो 8 साल का है। मैं थोडा सा थक गया था और मेरी मांस पेशी में कुछ खिंचाव आ गया था।

शारीरिक पीड़ा जो जागृत अवस्था में हो रही थी वह स्वप्न में भी पता था। यह सुनने में अजीब लगता है, लेकिन यह सच है। मैं अपने शरीर से किसी ना किसी तरह से जुड़ा हुआ हूँ। मैंने इसे अपनी स्वप्न अवस्था में महसूस किया और जब मेरी चेतना जागृत अवस्था में गई तो मैंने पाया, हाँ थोड़ा दर्द तो जरूर है। तब मुझे यह विश्वास हो गया कि मैं दोनों अवस्थाओं में आ–जा रहा हूँ। मैंने फिर तीसरी बार कोशिश की और इस बार मुझे एक ज्योमेटरी का चित्र अपनी तीसरी आँख पर दिखा, जो बहुत तेज और चमकीले हरे रंग का था। मैं डर गया और मैंने ऊँ ऊँ का मंत्र बोलना शुरू किया। फिर मैंने जागृत अवस्था में जाने की और अपनी आँखें खोलने की कोशिश की। पर वैसा इस बार नहीं हुआ। मैं बिल्कुल हिलडुल नहीं पाया और फिर मुझे याद आया कि आपने कहा था यह सब अवास्तविक है, सच नहीं है। मैं तो मात्र एक साक्षी हूँ। मैं उसे सिर्फ देखता रहा फिर वह अपने आप गायब हो गया और मैं थोड़ी देर बाद पूर्ण जागृत अवस्था में वापस आ गया।

मैंने फिर से इन सब घटनाओं के बारे में सोचा। मुझे कई तरह के विचार आने लगे और नींद आने में बहुत मुश्किल हुई। लेकिन फिर मुझे याद आया कि यह सब तो एक भ्रम है, चेतना का एक खेल है, इसका मुझसे कोई लेना देना नहीं है। और फिर मानो जादू से सारे विचार कम हो गए और मैं सो गया, सुबह अपनी दिनचर्या शुरु करने के लिए। सुबह उठकर मुझे सब याद आ गया।

गुरूजी, क्या आपको लगता है कि नींद में एक अवस्था से दूसरी अवस्था में आना जाना मुमकिन है? क्या यह अद्वैत की समझ से जुड़ा है?

एडजीः

मेरा अनुभव यह है कि चेतना की सारी अवस्थाएँ भ्रम हैं और केवल मेरे साथ होती हैं। बिल्कुल इसी तरह जैसे आसमाँ में बादल आते–जाते रहते हैं। यह अवस्थाएँ और अनुभव "तुम्हें" नहीं छूते।

फिर भी, यह जरूरी है कि चेतना को पूरी तरह से समझने के लिए कुछ समय तक तुम्हें उसके साथ खेल खेलना पड़ेगा। ताकि तुम समझ जाओ कि यह तुम्हारे लिए कोई वास्तविकता या सार नहीं रखता है। इसे ज्यादा गंभीरता से मत लो। यह एक खेल है। और यहाँ पर झूठी खोज करना बहुत आसान है जो कुछ दिन बाद किसी और नई असत्य खोज से झुठला दी जाएगी। यह खेल बदलाव से भरपूर और अनन्त है। इसमें कहीं भी कुछ भी सत्य नहीं है।

तुम्हारे लिए शून्यता पर समाधि करना, उसके साथ कुछ समय के लिए एक होना, महत्वपूर्ण होगा। यह पारम्पारिक तरीका है। यह तुम्हारे चेतना के प्रति प्रेम है जो तुम्हें यहाँ तक लाया है।

याद रखो तुम्हारा किसी व्यक्ति, प्रक्रिया या चीज़ से कोई लेना–देना नहीं है, तुम्हारी अलग इकाई का कोई अस्तित्व ही नहीं है। यह संसारिक चेतना तो अपना एक अलग ही काम करती रहती है। विचारों की तुम बिल्कुल चिंता मत करों। शून्यता के प्रति सजग रहो और जागृत, स्वप्न और निद्रा अवस्थाओं के आने–जाने को भी देखो। इससे भी अच्छा है कि तुम "मै एहसास" को पकड़ कर ध्यान लगाओ।

हर गुरु का सन्देश थोड़ा सा भिन्न होता है और वह उनकी शिक्षा परिवेक्ष और तन–मन पर उनके प्रभावों पर निर्भर है। दो शिष्य एक ही गुरू से पढ़ने के बाद भी, अलग–अलग संदेश दुनिया को देते हैं, जैसे रमण महर्षि और निसर्गदत्त महाराज के भी भिन्न संदेश थे। तो मैं जो कहता हूँ वह पथ–प्रदर्शक है "सत्य" नहीं है।

जल्दी ही एक ऐसा समय आयेगा जब तुम अपने ही लक्ष्य दिखाने वाले शब्दों की किताब औरों के लिए लिख पाओगे।

मेरे लिए तो अब इस दुनिया या चेतना में ऐसा कुछ नहीं है जो मुझे अपनी ओर खींचता है। मेरे पास जो बाकी रहा है, वह है सिर्फ तुम जैसे व्यक्तियों की देख–रेख जो विमुक्ति के बहुत करीब हैं या उन लोगों की देखभाल करना जिन्हें मदद की जरूरत है, या फिर पशु–पशी जो अपनी मदद खुद नहीं कर सकते, उनकी परवाह। मैं इस भ्रामक सत्य में भाग ले रहा हूँ और ऐसा अभिनय करता हूँ जैसे सब कुछ वास्तव में है, क्योंकि मैं इन सबके प्रति संवेदनशील हूँ और उनको सहारा देना चाहता हूँ। मेरे मन या मेरी शून्यता से जो कुछ निकलता है, उस में मेरी कोई रूचि नहीं है। यह एक भ्रम है – अस्थायी, बदलाव से भरपूर और बिना किसी ठोस धरातल के।

वह छोटा सा बिल्ली का बच्चा जो एक नाले में रहता है, जो सर्दी में कांप रहा है, गीला और भूखा है, उसकी ज़रूरत ही मेरी सच्चाई है। आखिर में, तुम जो किताब लिखोगे वह शायद बहुत अलग होगी। लेकिन मैं यह आशा करता हूँ कि तुम जो लिखोगे वह करुणा, संवेदना व न्याय से पूरित होगा।

ऐसा लगता है कि तुम और मैं एक गहरे स्तर पर जुड़े हैं क्योंकि हमारे संदेश और साधना के अनुभव एक जैसे लगते हैं। ऐसा लगता है कि तुम्हारे पास वह सारी सामग्री है जो तुम्हें एक दिन एक बहुत अच्छा गुरू बना सकती है। जल्दबाजी मत करो। अपने और दूसरों के साथ विनम्र रहो और धीर–धीरे आगे बढ़ो।

राजीवः गुरूजी, आपने सही कहा था, मैं चेतना से थोड़ा खेल रहा था, शायद कोई प्रमाण लेने के लिए। मेरी चेतना मुझे स्वप्न अवस्था में भी ले गई। लेकिन हाँ यह सिर्फ खेल है और कुछ नहीं – इसे गंभीरता से नहीं लेना चाहिए। मैं जानता हूँ कि सोच विचार भ्रम है, वास्तविकता नहीं। स्वप्न अवस्था हालांकि जागृत अवस्था से अधिक ही सुन्दर, शक्तिपूर्ण और रंगीन थी, लेकिन मैं तब भी जानता था कि यह असत्य है। और धीरे–धीरे मुझे कुछ संकेत मिल रहे हैं कि अपने आप में भी चेतना अवास्तविक है।

मैं चेतना से प्रेम में बदलाव को भी ध्यान से देख रहा हूँ। चेतना की धारा यहाँ हैं, जो दूर किसी पर छाई है, लेकिन यह अपना आकार बदलती रहती है। अब यह हमेशा एकात्मकता नहीं है, कई बार यह उदासी से भी भरी होती है। कई बार यह अतिसुन्दर होती है और कई बार बिल्कुल ही नहीं। यह बस, एक बहती हुई भावना है – दुःख या शोक की (अब जिसकी कोई वजह नहीं है)। यह सिर्फ है। मैं सिर्फ इसे देखता रहता हूँ, वो ही मेरा "होना" या "मैं हूँ" है। कुछ करने की ज़रूरत नहीं है, सिर्फ देखना है। तो मैंने सीखा कि यह हर्ष, यह उल्लास, यह एकात्मकता अस्थाई है, चेतना के दायरे में जिसको मैंने आखिरी अवस्था समझाा था, वह "मैं" अपने आप में अस्थाई है और मैं इसे भी ध्यान सा देख रहा हूँ। और उस दुःख, शोक, उदासीनता को अपने दिल की गहराईयों में चेतना की अवस्था में भी उठता हुआ महसूस कर रहा हूँ। आपके शब्दों को याद कर रहा हूँ – "यह वास्तविक नहीं है", "यह तुम नहीं हो"। हाँ, यह 'मैं' कैसे हो सकता हूँ अगर मैं इसको देख सकता हूँ?

इस दौरान ऐसा नहीं होता कि मैं एक विचारहीन क्षेत्र में हूँ, यह महत्वपूर्ण नहीं है, विचार हैं, उन्हें जो काम दिया गया है, वो कर रहे हैं। मेरा ध्यान तो "होने" पर या मेरे अस्तित्व पर है – फिर चाहे यह दुःख, उदासी, हर्ष या कोई और भावना ही क्यों न हो। यह वर्तमान क्षण ही "मैं हूँ" या मेरा "होना" है। मैं उसे छू सकता हूँ, लेकिन यह स्थाई नहीं है, इसका रूप दोहरा है और इसको अब मैं जान गया हूँ – आपने इसके बारे में चेतावनी दी थी। उस समय मैं महसूस कर रहा था कि अरे वाह! मैं परमानन्द का अनुभव कर रहा हूँ। मुझे और कुछ नहीं चाहिए – मैं "यह" हूँ, मैं परमसुख हूँ, मैं एकात्मकता हूँ।

लेकिन अब मुझे देखिये – एकात्मकता के लिए साधन जुटा रहा हूँ साथ ही उसकी पहचान करनी है यानि इसमें कोशिश और अहंकार होगा, ज़्यादा से ज़्यादा पाने की कश्मकश होगी। क्यों न "मैं हूँ", होने की अवस्था में ही रहूँ? चेतना को मुझे जो कुछ भी देना है, दे, वही ठीक है। मैं आपने आप को हमशो याद दिलाता हूँ – साक्षी बनो। यही सही है न, गुरूजी?

गुरूजी, आप कहते हैं कि आपको मेरे लिए प्रेम है और उनके लिए भी जिन्हे आपकी जरूरत है। आपका दिल बहुत बड़ा और दयालु है। मैं तो सिर्फ ऐसी किताब पढ़ना चाहता हूँ, जो मुझ पर लिखी गई हो और जिसका हर पन्ना खाली हो। उनमें कुछ भी नहीं हो। अगर यह मुमकिन है तो मुझे स्वयं के खालीपन को पढ़ने की योग्यता चाहिए। जो कुछ सीखाने की चीज़ है, वह मैं सिर्फ अपने आपको सिखाऊँ। किसी भी तरीके से सेवा करूँ और अपने आपको उसके योग्य बनाऊँ।

एडजीः

इस "मैं हूँ" या "होने" की अनुभुति का विचारों और भावनाओं से कोई लेना–देना नहीं है। शरीर के होने का एहसास, विचारों का आना–जाना और भावनाएँ – "मैं हूँ" की अनुभुति पर गुज़रते हुए बादल जैसे हैं। तुम्हें

विचारों और भावनाओं से और गहराई में जाकर, जो अपनी वास्तविकता लगे, उस पर ध्यान देना होगा। बाद में, तुम्हें लगेगा कि यह अनुभुति भी अपने आप में एक बादल है, जो तुम्हारी गहराइयों के ऊपर से गुज़र रहा है।

(टिप्पणीः इस बात पर ध्यान रखना चाहिए कि अब तक राजीव के संदेश ठीक से नहीं लिखे गए थे। इन में व्याकरण और अक्षरों की गलतियाँ थीं और ये बेतरतीब थे। मैंने उसे एक संदेश भेजा कि अगर उसे गुरू बनना है तो उसे अपने शब्दों और विचारों को ठीक से व्यक्त करना होगा। उसे अपने शब्दों का सही चुनाव करना होगा। मैंने पहले कहा है कि शब्दों और विचारों की तीक्ष्णता हमें आत्म विश्लेषण और साधना करने में मदद करती हैं। अब जब वे लिखते हैं तो उनकी भाषा बहुत सही होती है। चेतना उनके अन्दर से बोलती है। वह ई–मेल यहाँ नहीं है, लेकिन यह निम्नलिखित ई–मेल इस बात को दर्शाता है)।

एडजीः

तुमने बहुत तेज़ी से यह लम्बा फासला तय किया है, राजीव। इसका मतलब है कि तुम्हें अब थोड़ा समय अपनी अवस्थाओं और उनके समझ के सार को एक करना पड़ेगा, ताकि तुम इसे अपने में स्थायी कर सको।

समय के बीतने पर परमानन्द तो चला जाता है क्योंकि वह तो समाधि और अन्य प्रकार की भिन्न चेतनाओं का कार्य है। मुझे तो परमानन्द काफी ध्यान–भंग करने वाला और अनावश्यक लगता है।

कई लोग समाधि को कुछ ज़्यादा ही महत्व देते हैं – समाधि को, विभिन्न चेतनाओं के भागों को और सम्पूर्ण चेतना को, जो वास्तव में मात्र शून्यता है। लेकिन वह स्रोत– "तुम" – शून्यता से परे हो, और समाधि स्रोत पर लागू नहीं होती। यह कई युगों से स्वीकृत एक पूर्वस्थिति है जो वास्तव में ज़रूरी नहीं है।

अंत में, जब तुम अपनी बची हुई और भी सारी बाधाओं को गिरा दोगे, तब तुम सिर्फ विराम करोगे, कुछ विशेष नहीं करोगे, अपने आप में रहोगे और आध्यात्मिक रूप से विकसित होने के लिए कोई खोज या कोशिश नहीं करोगे। तुम्हारी यात्रा और संघर्ष हमेशा के लिए खत्म हो जाएगा। तब तुम एक मृत शरीर जैसे हो जाओंगे, दुनिया से अलग, असंबद्ध जैसे कि कई लोग हो जाते है। या फिर तुम्हें एक ऐसा एहसास होगा, कि यह दुनिया तुम्हारे मन की रचना ही है और इसलिए तुम इसके लिए जिम्मेदार हो। एक अर्थ में चाहे यह मिथ्या हो, पर फिर भी तुम्हारी ही है। तुम बुद्ध, ईसा मसीह बन जाओगे – बचाने वाले और मदद करने वाले।

तुम एक निश्चय लोगे – हर जीव जन्तु की जिस प्रकार से हो सके मदद करने की कोशिश करोगे। अपने पैरों से जूते उतारकर किसी गरीब इन्सान को देने से लेकर, किसी मूक प्राणी को खतरों से खेलकर भी जान बचाने जैसी मदद करोगे। यह ही मेरी नजर में सच्चा मोक्ष है, – सार्वभौमिक ममतामयी माँ की तरह प्यार में ही खो जाना।

शायद मुझे पता है, तुम किस रास्ते पर चलोगे और मैं ऐसी कामना करता हूँ कि तुम वो ही रास्ता चुनो। पर वह चुनाव तुम्हारा नहीं होगा। वह अपने–आप ही होगा।

अगर तुम गुरू बनना चाहते हो तो तुम्हें अपने विचारों को बड़ी स्पष्टता से प्रस्तुत करना होगा, ताकि लोग तुम्हें आसानी से समझ सकें। यह एकाग्रता बढ़ाना बहुत ज़रूरी है ताकि तुम्हें अपनी ही सोच में छुपी हुई धारणाएं देखने में आसानी हो। तुम्हें अपने शब्दों में स्पष्टता लानी होगी, ताकि तुम भी दूसरों के विचारों और वर्णन को स्पष्टता से समझ सको।

राजीवः

ध्यान में, जब मैं शून्यता का साक्षी होता हूँ तो कभी–कभी मैं एक प्रकाश बिंदु देखता हूँ, जिस पर ध्यान केन्द्रित करने पर वह गायब हो जाता है। फिर एक तेज प्रकाश का गोला जो अपनी ही धुरी पर घूमता हुआ बढ़ता जाता है, दिखता है। कई बार मुझे बढ़ता हुआ प्रकाश, चमकता हुआ नज़र आता है। ये सब किसी क्रम से भी नहीं आते हैं।

यह आते–जाते रहते हैं। शायद यह चेतना का खेल है लेकिन क्रिया योगी, इस छोटे से प्रकाश बिंदु को तीक्ष्ण दृष्टि से देखना या छेदना ही बहुत महत्वपूर्ण समझते हैं, सारे दिन के साधक के अनुभव, एकात्मकता, साक्षी प्रक्रिया, आनंद और चैतन्य से प्रेम – ये सब बातें क्रिया योगियों को मूल्यहीन लगती हैं। वास्तव में जिन योगिओं से मैं मिला हूँ, उन्हें इस प्रक्रिया और मेरे अनुभव का कोई ज्ञान ही नहीं था। कुछ कहते थे कि

प्राणायाम की प्रक्रिया को बढ़ाओं या घटाओ। किसी को भी यह पता नहीं था कि मेरे साथ, वास्तव में क्या हो रहा है।

सिर्फ आपने इसे स्पष्टता से बताया और आखिरकार मैं समझ पाया कि यह चेतना का खेल है जो मेरे साथ हो रहा है। क्रिया से मैंने फिर भी काफी कुछ सीखा है। मैं इसे रोज दो से तीन घंटे तक लगातार करता था और काफी भारी कुम्भक भी करता था जिसकी वजह से मुझे स्वास्थ्य की काफी समस्याओं का सामना करना पड़ा।

जो परिणाम मुझे अद्वैत से मिले हैं, वे क्रिया से भी ज्यादा अच्छे हैं, क्योंकि अद्वैत में मुझे बहुत ज़्यादा खास नियंत्रण का खतरा नहीं है। और भी ऐसे कई उलझे हुए प्रश्न हैं जिनका क्रिया के पास कोई उत्तर नहीं है।

मेरे गुरु एम.पी. दुबेजी,जिन्होंने मुझे 5 साल पहले दीक्षा दी थी, हमें जल्दी ही छोड़ कर चले गए और मुझे उनसे मिलने और अपने विचारों का आदान–प्रदान करने का बहुत कम अवसर प्राप्त हुआ। और उनके बाद किसी को बिन्दु–कूटस्थ के सिवाय और पता नहीं था। लेकिन ''गुरूजी'' यह तीसरी ऑख को बेधना क्या होता है? क्या यह आत्म–अनुभूती के लिए ज़रूरी है?

एडजी :

मैं इसका स्पष्टीकरण करूँगा क्योंकि यह एक महत्वपूर्ण प्रश्न है और इसका जवाब बहुत लोगों के लिए मायने रखता है।

ज़ेन में, गुरू ज़ोरिकी और प्रज्ञा के संतुलन के बारे में बात करते हैं। साधना, ध्यान और समाधि की एक शक्ति है ज़ोरिकी। जबकि प्रज्ञा एक गहन ज्ञान है जो आत्म और वास्तविकता – चेतना के स्वभाव को दर्शाता है।

धारणा यह है कि ध्यान या समाधि शक्ति, ज्ञान के साथ–साथ चलनी चाहिए नही तो सिद्धि अधूरी है।

तुमने इतने सालों की साधनाा से एक जबरदस्त ध्यान शक्ति उत्पन्न की है इसलिए चेतना के सच्चे स्वभाव का ज्ञान, तुम्हें आसानी से समझ में आ जाता है। अब एक बेहतर संतुलन है क्योंकि अब तुम्हारे पास घनी अध्यात्मिक ऊर्जा के साथ उसकी गहन समझ भी है। ज़्यादातर लोग जो अद्वैत की शिक्षा लेते है ध्यान–साधना नहीं करते और अद्वैत का सच्चा अर्थ खो जाता है। यह इसलिए होता है क्योंकि उनकी एकाग्र ध्यान शक्ति, उनकी सजगता को उज़ागर नहीं कर पाती है।

मुझे नहीं लगता कि आजकल के गुरू गहन साधना पर ज़ोर डालते हैं – इसलिए जो उनके शिष्य हैं उनमें सिर्फ एक ऊपरी समझ होगी। लेकिन वे कोई सच्ची ज्ञान शक्ति प्राप्त नहीं कर पाते। वह उथली और दोषपूर्ण होगी। उनके पास समाधि की परिवर्तनी या बदलाहट करने की शक्ति नहीं है। सौभाग्यवश मैंने कुछ ऐसे ज़ेन गुरूओं से शिक्षा ली थी, जो साधना और ध्यान पर बहुत ज़ोर डालते थे। दूसरी ओर रॉबर्ट ने हमेशा आत्म निरीक्षण पर और उसके साथ समय बिताने पर ज़ोर डाला न कि औपचारिक ध्यान–साधना पर। लेकिन तुम साधना का अभ्यास अपने आप पर या अपने गुरू पर ध्यान कर सकते हो। कई बौद्धिक परंपराएँ अपना सारा समय, इस शून्यता की खोज और एहसास में ही लगा देती हैं।

यह बात तीसरे नेत्र के लिए भी लागू होती है। मेरा तीसरा नेत्र बस कुछ ही महीनों के साधना के बाद खुल गया था, क्योंकि यह मेरे लिए बहुत ही स्वाभाविक था। ऐसा लगा कि यह काम मेरे लिए पहले से ही निर्धारित किया गया है जैसे एक फूल का स्वाभाविकता से खिलना। गहरी साधना के बाद तीसरा नेत्र अपने आप धीरे–धीरे खुल गया और चेतना का शून्यतापूर्ण स्वभाव मुझे दिखा। लेकिन तुम्हें तो इन सब बातों की पहले से ही जानकारी है, इसलिए किसी भी चीज़ के भेदने की कोई जरूरत ही नहीं है। लेकिन शायद तुम अपनी शिक्षा पूरी करने से पहले स्वयं ऐसा करके देखना चाहेगे।

ऐसे बहुत से गहन रहस्य हैं जो तुम्हें अभी खोलने बाकी है और जब सही समय होगा मैं तुम्हें ऐसा करने में मदद करूँगा। लेकिन 'तीसरा नेत्र' तो एक नये साधक की खोज में है। तुम तो इससे कहीं आगे हो।

बहुत सारे योगी साधना की शुरुआत अपने 'तीसरा नेत्र' खोलने की कोशिश से करते हैं, जो दोनों ऑखों के बीच में अन्दर और ऊपर होता है। ज़्यादातर थोडी ध्यान साधना के बाद अंधेरे से उजाले को एहसास होता है, ज़्यादातर एक बैंगनी या हरे रंग जैसा उजाला दिखता है। इस प्रज्वलित क्षेत्र का धीरे–धीरे आकार बड़ा होता जाता है और साधक इसे प्रज्वलित आत्म जागरुकता की रोशनी को काल्पनिक तौर पर ऊपर नीचे या बाहर की ओर धकेलता है। लेकिन यह सब एक ही समय पर नही होता है। धीरे–धीरे यह तेज रोशनी तीव्रता से

पूरे आंतरिक अनुभव को घेर लेती है। इस तीव्र रोशनी को वैसा ही माना जाता है, जैसा शरीर के बाहर आने पर तेज़ रोशनी का एहसास हो। आंतरिक रोशनी से इसका मतलब है कि वस्तुओं की दुनिया में आंतरिक रोशनी से परिपूर्ण शून्यता वैसी ही दिखती है जैसे बाहर प्रकाशित विस्तार हो। अद्वैत के शिष्यों को सिर्फ एक ही लाभ मिलता है और वो है उनके अन्दर की दुनिया इनती प्रज्वलित और विस्तृत है कि वह एक विस्तारित जगह बना लेती है, जिसमें अपनी आंतरिक चमत्कारिक दुनिया समा जाती है। इसी तरह जैसे बाहरी आभासी अंतरिक्ष एक ऐसा प्लेटफॉर्म है जो हमारी आभासी बाहरी दुनिया को अस्तित्व देती है।

राजीवः

फिर भी एक साधक काल्पनिक स्थानों में चमत्कारी प्रदर्शन का बंदी होकर ध्यान और साधना के खेल सदा के लिए खेल सकता है। 'कई बौद्धिक परम्पराएँ अपना सारा समय कई प्रकार की शून्यताओं की खोज और एहसास में लगाती है।'

गुरूजी, यह साधना में डूबे हुए कई शिष्यों के वास्तविक अवस्था हैं, ज़्यादातर क्रिया योगिओं के साथ मैंने इस अवस्था में नौ साल गुज़ारे है और इसलिए मुझे पता है कि आपके विचार कितने सुन्दर और वास्तविक है। गुरूजी, मैं दो तरह के योगियों से मिला हूँः–

(1) जो जिज्ञासु हैं – ऐसे लोग जिन्होंने योगानन्द जी की 'Autobiography of a Yogi' को पढ़ा और जिन्हें लगा कि उनके जैसे उन्हें भी अपनी आध्यात्मिकता खोज कर वैसा बनना चाहिए। यह सारा परमानन्द और भक्ति क्रिया का एक आसान रास्ता है। भगवान के पास पहुँचने का और सारे दुःखों को नष्ट करने का। या फिर

(2) वो जो वास्तव में क्रिया का अभ्यास करते हैं, अधिकतर पारम्पारिक क्रिया का और जिन्होंने एक लम्बा अरसा इस अभ्यास और साधना को दिया है। एक शंका है कि पहले वालों को कुछ क्षणों की खुशी के सिवा ज़्यादा कुछ नहीं ... मिलता और वह बहुत कम प्रगति करते है। उनका ध्यान केन्द्र अपने गुरू के लिए निरपेक्ष भक्ति है जिसको उन्होंने साधना का सबसे महत्वपूर्ण हिस्सा समझ लिया है। यह एक ही गुरू नहीं बल्कि ज़्यादातर क्रिया संस्थाओं का हाल है। ये सब सिर्फ क्रिया योगी हैं।

और दूसरे वे हैं जिन्होंने अपने तीव्र और गहन साधना अभ्यास से अपने मानसिक केन्द्र और एकाग्रता को विकसित किया है। लेकिन ऐसे लोगों को यह बिल्कुल पता नही है कि इस शक्ति का क्या किया जाए। उन्हें कई बार अलग–अलग प्रकार के चमत्कारिक अनुभव होते हैं लेकिन वे हमेशा 'कुछ और' की होड़ में लगे रहते हैं। इसका तात्पर्य है कि वे हमेशा 'कुछ पाने' की दौड़ में ही लगे रहते हैं और जल्दी ही कुंठित, निराश और क्रोधी हो जाते हैं। जो भी ऊर्जा उन्होंने जमा की, वह व्यर्थ की भावनाओं में गवां दी। उन्होंने दृढ़ इच्छा शक्ति से अपने विचार तो रोक लिए, लेकिन मेरे ख्याल से एक या दो को छोड़कर कोई भी अपनी 'मैं हूँ' अवस्था या चेतना को महसूस नहीं कर पाया। उन एक दो व्यक्तियों में मेरे स्वर्गीय क्रिया गुरू भी थे।

ज़्यादातर लोग, इस नये, निराले, चमत्कारिक अनुभवों के पीछे भागते–भागते वास्तविकता और चेतना के सच्चे रास्ते पर चलना ही भूल गए। मेरे विचार में उनके पास सजगता, जागरुकता की शक्ति तो थी, पर उन्हें इस्तेमाल करने का तरीका नहीं आया। वे भी क्रिया योगी रहे लेकिन एक बहुत ही बिखरी हुई अवस्था वाले। क्योंकि उनकी हर मान्यता, विश्वास, आदत और यादें सिर्फ 'क्रिया' शब्द से जुड़ी हुई हैं।

अगर किसी को भी कहीं पहुँचने में बाधा आती है तो सब प्रश्नों का एक ही जवाब होता था। अपनी क्रिया को अंकों से बढ़ाओं या अपने गुरू के प्रति भक्तिभाव बढ़ाओं, वही तुम्हें संभालेंगे। मुझे कभी भी समझ में नहीं आया कि यह गुरू भक्ति किसी को अपनी ही भावनाओं से जूझने में, मदद कैसे कर सकते हैं। भावनाएँ साधना का एक अहम हिस्सा है। कई या तो अनजाने ही इन भावनाओं के गुलाम हो जाते हैं या फिर उन भावनाओं से भागते हैं।

सिर्फ आत्म निरीक्षण ही इस स्थिति की वास्तविकता को महसूस करने में हमारी मदद कर सकता है, ऐसा मुझे लगता है, गुरूजी। 'होने' की अवस्था में आने के लिए हमें उसे एक फूल की तरह खिलने का अवसर देना होगा। ज़्यादा प्रयत्न के बगैर और 'मैं कर्त्ता हूँ' की भावना के बिना। गुरूजी, 'होने' की अवस्था तो हमेशा मौजूद है, हमें बस हर क्षण में इसे ध्यान से देखना होगा।

मैं तो अचेतन स्थिति में, इत्तफाक से इस ज्ञान के चुंबकीय बहाव से पहुँचा। मुझे माँ ने अपने को समझने का मार्गदर्शन और अपने प्यार और परिवर्तित होते रुपों से आशीर्वाद दिया। अब, जब मैं कोई ऐसा वाक्य पढ़ता हूँ तो कहता हूँ – आह! वो यह था। आप मेरी उस समझ और ज्ञान के माला के एक खोए हुए मोती थे। मैं

आपके बिना खोया हुआ साधक था। और अपने आपको आपके स्पष्ट मार्गदर्शन के लिए भाग्यवान समझता हूँ, बहुत भाग्यवान।

यह बात अब मुझे मुद्दे पर लाती है गुरूजी, वह मुद्दा जो आपने बड़ी ही सुन्दरता से उठाया है। गुरूजी! क्या आप इन दोनों को जोड़ने का सोच रहे हैं क्योंकि एक–दूसरे के बिना हम 'पूर्णता' को ध्यान से देख नहीं पाएंगे। बहुत से अद्वैती भी इस 'होने' को महसूस नहीं कर सकते क्योंकि उनके पास शांति और एकाग्रता नही है और योगी भी इसको महसूस नहीं कर सकते क्योंकि उन्हें 'होने' से कोई लेना–देना नही है। क्या यह ऐसा ही है गुरूजी?

और गुरूजी, 'होने' के अस्तित्व को समझे बिना या 'मैं हूँ' अवस्था के बिना तो मौन गवाह का पकड़े जाना मुश्किल है। उसके बाद ही यह ज्ञात होता है कि मैं तो 'मैं हूँ' के दायरे से परे हूँ। क्या ऐसा ही नहीं है, गुरूजी?

एडजीः

देखो राजीव, अब तुम एक गुरू बन रहे हों। तुम्हारी समझने की शक्ति 100 प्रतिशत सही है। इसलिए ही यह संवाद ज़रुरी है और यह दृष्टिकोण एक साधना का अभ्यास करने वाले योगी से आ रहा है। गुरुओं के साथ हुए, ऐसे संवाद जो किताबों और इन्टरनेट पर मिलते हैं इन विषयों के बारे में बात नहीं करते। वो तो बहुत ही सादे विचार हैं जो शुरुआती किताबों की एक बड़ी संख्या के पाठकों के लिए हैं।

तुम बहुत ही तीव्रता से सूक्ष्म शरीर के स्वामी बन रहे हो जो चेतना का एक काल्पनिक खेल है। इस खेल में एक समय तुम चेतना के दायरे में बाहर चले जाओ और स्थायी रूप से अपनी पहचान उससे करोगे जो तुम वास्तव में हो। लेकिन कोई जल्दबाजी नहीं है। इस खेल का और उसके रहस्योद्घाटन का मज़ा लो।

यद्यपि तुम 'मैं हूँ' की जागरूकता के बिना भी बोध प्राप्त कर सकते हो। सिर्फ इतना ध्यान रखना कि यह रास्ता बहुत मुश्किल है।

राजीवः

गुरूजी, मैं आपकी वेबसाइट http://itisnotreal.com पर था। मैं एक बहुत ही कम पढ़नेवाला व्यक्ति हूँ लेकिन मुझे आपकी वेबसाइट बहुत ही प्रशंसनीय लगी।

मैं आपकी वेबसाइट पर कुछ लेख पढ़ रहा था तब मैंने आपके उस 'हृदय' के अनुभव को पढ़ा, जो मेरे अनुभव से मेल खाता था। मैंने इसके बारे में अपनी बुकलेट में लिखा है। 26 अगस्त, 2003 को मुझे 'हृदय चक्र' पर अपने आप सांस रुकने का अनुभव हुआ। मेरी रीढ की हड्डी के मूल से, मेरे सिर के ऊपर तक एक परमानन्दी ऊर्जा की लहर बड़ी तीव्रता से उठी और मैं पूरी तरह तेज़ रोशनी से प्रज्वलित हो गया। पहली बार मुझे थोड़ा डर सा लगा, लेकिन उसके बाद कुछ दिन तक मैं अगाध हर्ष में डूबा रहा।

माँ चेतना का आशीर्वाद मेरे साथ तबसे आज तक है। मैंने पढ़ा था कि आपके साथ भी कुछ ऐसा ही घटा था। अनुभव तो बदलते रहते हैं और आते–जाते रहते हैं जब वे चेतना में होते हैं, लेकिन यह भी दर्शाते हैं कि हम एक दूसरे में बंधे हुए हैं। हम एक दूसरे को सिर्फ पिछले एक महीने से जानते हैं, लेकिन मुझे लगता है जैसे आप एक गुरू के समान अपने शिष्य, यानी मेरी की देखभाल एक लम्बे अरसे से कर रहे हैं। मुझे विश्वास नहीं होता कि मैं आपको सिर्फ एक महीने से जानता हूँ। यह नामुमकिन है।

राजीवः

गुरूजी, मैं आपकी अवस्था से अभी तक संपर्क नहीं साध सकता क्योंकि मैं उसके आस पास भी नहीं हूँ। लेकिन गुरुजी आपकी मुझे बहुत ज़रूरत है। आपकी इस बारे में सोच से भी ज़्यादा। देखिए गुरूजी, आपने मुझे इस चेतना के खेल का एहसास दिलाया है। मुझे यह भी पता है कि आप इस पर काम कर रहे हैं। आपके बिना तो मैं बस इस समाधि शक्ति से दिमागी खेल खेल रहा होता। और उसका क्या फायदा होता?

जब चेतना मुस्कुराती थी तो मैं खुश हो जाता था। और बहुत बार जब चेतना नहीं मुस्कुराती तब योगी उदास हो जाते हैं और उससे भी बदतर यह है कि वे ज़्यादा मात्रा में क्रिया करके उसे उत्पन्न करने की कोशिश करते हैं। मुझे यह सब आपके मार्गदर्शन के बगैर कभी भी पता नहीं चलता गुरूजी। चेतना स्वयं हमसे यह चाहती है कि हम उसे छोड़ दें, लेकिन हम ऐसा नहीं करते। यह इसलिए होता है क्योंकि बहुत से योगियों को

लगता है कि वे स्वयं ही चेतना हैं – सत्, चित्त, आनन्द। मुझे ऐसा एहसास हो रहा है कि हम इन में से कुछ भी नही है। वह हमें प्यार देती है ताकि हम उसे प्यार के पीछे न दौड़े बल्कि उसे स्वीकार कर लें, जैसी वह हैं, उसके 'होने' को उसी रुप में। प्यार से रिक्त या प्यार से भरपूर या शायद इस चेतना के अभिनय का एक दर्शक मात्र बनकर।

एक दिन मैं बिल्कुल मौन था, एकदम शांत, कुछ भी हिल नही रहा था, सब कुछ शांत था। ना खुशी थी ना गम, ना सुन्दरता थी अन्दर या बाहर भी, बिल्कुल कुछ नहीं था। मुझे सिर्फ कुछ घण्टे उस एकांत मौन में डूबने की इच्छा थी। कोई भी भाव नहीं था। एक अलग ही अवस्था थी वह। इसलिए मुझे अब पता है कि मां चेतना हमें अपने बदलते रूप और रंग हमें उदास करने या छेड़ने के लिए धरती है बल्कि हमें अपने द्वैत रुप से परे का अरुप दिखाना चाहती है। वह बहुत ही दयालु है पर योगी उनमें अपनी पहचान ढकते हैं और फिर जब भावनाओं की आतिशबाज़ी उनके अन्दर फूटती है तो बिखरी ऊर्जा को वे संभाल नहीं पाते।

एडजीः

ठीक है, राजीव, यह परमानन्द और हर्ष की अवस्था को जिसे तुम अनुभव कर रहे हो, सभी प्राप्त करना चाहते हैं। कई गुरू तो चेतना से एकात्मता के दायरे के बाहर ही नहीं जा पाते। वे उसमें ही फंस जाते हैं और अपने शिष्यों को भी वहीं फंसा कर रखते हैं। इससे भी खराब स्थिति में वो हैं, जो कहते हैं कि किसी कोशिश की जरूरत नहीं है क्योंकि ऐसा संदेश मात्र ही उनको मुक्ति की ओर ले जाएगा।

राजीवः

गुरूजी, आप लिखते हैं कि – 'तुम्हें कुछ भी ना होकर चेतना के दायरे के आगे जाना होगा। ऐसा करने के लिए तुम्हें बिल्कुल नासमझ बनना होगा, जिसे कुछ भी नहीं पता है। यह मार्ग का एक हिस्सा है।' इसका मतलब यह हुआ कि बौद्धिक रुप से हमें जो भी जानते हैं उसे खाली करना होगा, सारी धारणाएँ, अनुभव व ढाँचे छोड़ देने पड़ेगे। सच में वहाँ तक पहुँचना अपने आप में एक बहुत ही मुश्किल खेल है।

मुझे विश्वास है कि यह भी अपने आप होगा, तब जब कि मैं अपनी 'मैं हूँ' अवस्था में काफी देर तक रह पाऊँगा। यह कितनी भव्य अवस्था होगी, मुझे आश्चर्य होता है गुरूजी। मुझे आपका आशीर्वाद चाहिए।

एडजीः

मेरा आशीर्वाद सदा तुम्हारे साथ है, राजीव। तुम अपने आप चलके देखोगे, यह कैसा है। यह धारणाओं को छोड़ने से भी बड़ी बात है – यह मृत्यु के जैसा है। बहुतों को पहली बार यह पसंद नहीं आता क्योंकि यह मृत्यु जैसा महसूस होता है – 'मैं', 'मैं हूँ' और जानता हूँ के अनुभव का खो जाना। बाद में ऐसा महसूस होगा जैसे तुम अनंत आनंद में बह रहे हों, क्योंकि अब सीखने को और करने को कुछ भी नहीं है। तुम अब कुछ भी नहीं हो, अस्तित्वहीन हो पर शून्यता जैसे नहीं, क्योंकि शून्यता अब भी रहती है चेतना की तरह।

जो 'तुम' और 'मैं हूँ' वह पूर्ण रुप से सारी अवस्थाओं से अलग है। अवस्थाएँ चेतना के ही विभिन्न रूप है। निद्रा, स्वप्न, जागरण – तुम इन सब से परे हो। इसकी ना तो कोई गवाही हो सकती है और न ही इसका अनुभव किया जा सकता है। तुम तो बस केवल 'वह' ही हो सकते हो। तुम तो हमेशा वह ही हो, लेकिन दुनिया की बाहरी पहचान इस सत्य रूप को भंग कर देती है।

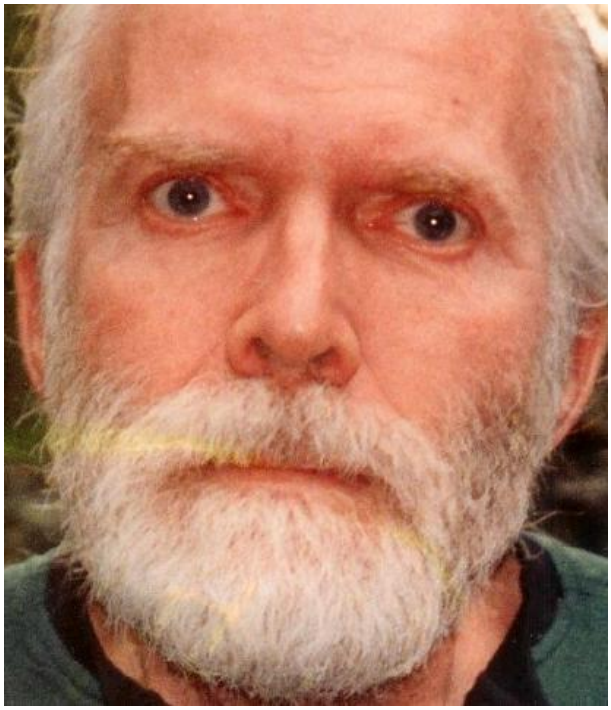

रॉबर्ट एडम्स

भाग – 2

राजीवः

मुझे लगता है कि चेतना के तरीकों की भविष्यवाणी नहीं की जा सकती। कई बार वह मुझे अपना हिस्सा बनने का न्यौता देती है जो एकात्मकता है और कई बार मैं उसके अस्तित्व का सिर्फ साक्षी बनकर रह जाता हूँ। यहाँ एक स्पष्ट विषय होता है (मैं) और एक स्पष्ट (वस्तु) होती है चेतना – आज के ध्यान जैसे।

इस एकात्मकता को पाने के लिए मैं बहुत सावधानी बरतता हूँ ताकि मुझे कोई कोशिश न करना पड़े। विचार ज़रूर आते हैं लेकिन मैं बहुत सावधान रहता हूँ। ऐसा करना एकाग्रता होगी ना कि शून्यता के बारे में जागरुकता। कोई प्रयत्न 'होने के लिए' असल में 'न होना' है। यह अब भी एक तरह की तलाश है – अपने पुराने अनुभव को फिर से महसूस करने की।

एडजीः

तुम कोशिश से मत डरो। प्रशिक्षण को प्रयत्नरहित करने के लिए बहुत तैयारी करनी पड़ती है। यह नये गुरुओं की एक भूल है जिसमें प्रयत्न का कोई महत्व नहीं है। वास्तव में वह अपने शिष्यों से कहते हैं कि उनका कोई अस्तित्व ही नहीं है – (वह है ही नहीं) और कोई प्रयत्न द्विभाजन को जन्म देता है, जो चेतना से एक होने में बड़ा रोढ़ा बन जाता है। शायद यह तब काम करेगा जब तुम अकेले नहीं बल्कि हमेशा एक आत्मानुभूत व्यक्ति की संगत में रहोगे।

राजीवः

'मैं हूँ' समाधि की अवस्था तो एक शुद्ध एकात्मकता की अवस्था है। इस अवस्था में ही किसी को परमानन्दीय चेतना का परिचय मिलता है। यह उस व्यक्ति की वास्तविक आनंद की अवस्था है, जिसमें चेतना के अलावा उसकी कोई पहचान नहीं होगी – मैं ही परमानन्दीय चेतन हूँ।

मैं राजीव नहीं हूँ, ना एक 'बेटा', ना ही एक 'पिता' या 'शिष्य', ना एक 'व्यापारी' ना 'योगी' ना ही 'ज्ञानी'। 'मैं तो वह ही हूँ जो इस सारी पहचान से पहले था'

मैं आपके बारम्बार चरणस्पर्श करता हूँ।

राजीवः

एडजी, अब तो मुझे गुरू की कृपा हर क्षण महसूस होती है। हाँ गुरूजी, एकात्मकता अब हर समय मेरे साथ रहती है।

जागृत अवस्था के दौरानः

एकात्मकता अब पहले जैसी मेरे साथ रहती है। एक मदहोशी सी छायी रहती है और वस्तुएँ बहुआयामी तथा काफी पास दिखायी देती हैं। अब मुझे विचारों और भावनाओं से पहचान बनाए रखना बहुत मुश्किल लगता है लेकिन मैं दूसरों के सामने थोड़ा – अभिनय कर लेता हूँ ताकि उन्हें 'मैं' अपने जैसा सामान्य व्यक्ति लगूँ।

वह ऐसा है कि विचार, भावनाएँ आती रहती हैं। मैं उन्हें ध्यान से देखता हूँ और फिर मुझे कैसी प्रतिक्रिया दिखानी है, वह निश्चय करता हूँ। यह सब बडी ही तीव्र गति से और स्वयं ही होता है। चेतना ही उस सबका ध्यान रखती है।

अब मैं साक्षी होने होने की कोशिश नहीं करता या जानबूझ कर सजग नहीं होता, यह तो अब अपने आप ही हो रहा है, गुरूजी।

अब उस मदोन्मत्तता या आल्हादी सजगता में किसी तरह की, कुछ भी, कोई भी हलचल नहीं होती है। मैं जैसे एक नई पिक्चर का शो हर रोज़ देखता हूँ।

मैं सच में सोचता हूँ कि इतने सारे लोग इस जगत में छोटी–छोटी व्यर्थ की बातों पर क्यों अपना समय बरबाद कर रहे हैं। वे असली मजा नहीं ले पा रहे हैं। यह एक ऐसा विचार है, जिससे मैं अक्सर सहमत हो जाता हूँ।

ध्यान के दौरानः

मैं आसन में बैठता हूँ लेकिन कुछ नहीं करता। मैं सिर्फ शून्यता को देखता हूँ। एक डेढ़ घंटा तो ऐसे गुजर जाता है जैसे एक मिनट हो। वह शून्यता अब मेरे माथे पर पहले से और भी करीब लगती है।

अब मैं ध्यान के दौरान दो अवस्थाओं के प्रति अपने को जागरूक पाता हूँ। एक तो जागृत अवस्था है जिसमें सामने की फैली शून्यता का मैं साक्षी बनता हूँ। इस अवस्था में अगर विचार भी बीच में आता है तो यह अवस्था वैसी ही रहती है (यह अपने आप बिना किसी प्रयत्न के होता है)। ध्यान के बीच में एकाएक मुझे कहीं से भी चित्र दिखने लगते हैं। कई तो बहुत ही बेतुके चित्र और विचार होते हैं। मैं एक स्वप्न अवस्था में रहता हूँ। यह एक शांतिपूर्ण स्वप्न अवस्था है। मैं उसे देखता हूँ और देखते–देखते जागृत अवस्था में वापस आ जाता हूँ।

तो अब मैं निद्रा अवस्था से जागृत अवस्था में और जागृत अवस्था से फिर निद्रा अवस्था में आता–जाता हूँ।

क्योंकि मैं इन अवस्थाओं को ध्यान से देखता हूँ, यह सुस्पष्ट है कि मैं शून्यता नहीं हूँ और ना ही मैं निद्रा या जागृत अवस्था हूँ। तो अब मैं यह देखने का प्रयत्न करता हूँ कि आखिरकार मैं वास्तव में क्या हूँ। सिर्फ यह शून्यता का फैलाव ही मुझे अपने वास्तविक रूप 'मैं' जो कि 'साक्षी' से मिलवा सकता है।

लेकिन यह तो ऐसा है जैसे मेरे आगे शून्यता का फैलाव, मेरे पीछे शून्यता के फैलाव को देख रहा है।

जब मैं इस शून्यता से देखता हूँ तो मेरा ध्यान 'मैं' पर होता है और उसे मैं हृदय के केन्द्र पर महसूस करता हूँ।

मेरा सच्चा स्वरूप एक वस्तु के रूप में शायद न हो, लेकिन यह एक दूसरी शून्यता के रूप में, हृदय केन्द्र पर महसूस होता है। यह वह ही स्थान है, जहाँ पर यह शून्यता मोम की तरह पिघल जाती है। इसका यह मतलब है कि मुझे एक डूबने का एहसास होता है, जैसे मेरे आगे की शून्यता डूब रही है, मेरे पीछे की शून्यता 'मैं' में जो हृदय केन्द्र पर है। क्यों यह ऐसा ही है एडजी?

एडजीः

यह सब एक भ्रम है। इस आभासी शून्यता और वस्तु के जाल में तुम खो न जाना। इन पर अधिक ध्यान मत दो। हालांकि इन सब में असीम खुशी मिलती है, यह समझ सिर्फ रूप की है, ना कि कभी न बदलने वाली सच्चाई 'तुम्हारी' का।

अंत में बस एक ही शून्यता है लेकिन इसके भी कई पहलू हैं। हर शून्यता के रूप और उसकी गुणवत्ता पर सावधानी से ध्यान दो और देखों कि क्यों इनमें से किसी का 'एहसास' विषय जैसा या साक्षी जैसा है। तुम्हें अपना ध्यान केन्द्र 'मैं' के एहसास या विषय पर लगाना है, ना कि इसके असंख्य रूप, विचार और शून्यताओं पर जो तुम्हें प्रतीत होती है।

राजीवः

इन दोनों उपर्युक्त बातों में एक ही शून्यता है जो दूसरी शून्यता से मिल जाती है। लेकिन फिर मुझे लगा कि यह शून्यता जो मेरे पीछे है – वह 'मैं' नहीं हो सकता क्योंकि मैं इन दोनों शून्यताओं को मिलते हुए देख सकता हूँ – साक्षी बन सकता हूँ। तो मैं आखिर कहाँ हूँ फिर? क्या मैं वो हूँ जो इस शून्यता के मिलन का साक्षी हूँ। क्या यह ऐसा ही है?

एडजीः

वाकई! अभी तुम सब चीजों को एक सोच, धारणा के हिसाब से समझा रहे हो। लेकिन एक ऐसा समय आएगा जब तुम अपनी सारी अवस्थाओं को, अपने से अलग और अवास्तविक महसूस करोगे। जब तुम साक्षी होओगे, विषय होओगे, लेकिन तुम उसे साक्षी को एक वस्तु या पदार्थ की तरह पकड़ नहीं पाओगे।

तुम्हें तो बस साक्षी बनना है। साक्षी को एक पदार्थ या वस्तु की तरह देखना–समझाना नहीं है।

राजीवः

तो क्या ऐसा है कि यह शून्यता का फैलाव जो मेरे आगे और पीछे है जिसको अब तक 'मैं' अपना सच्चा रूप समझता था, वाकई में एक ही शून्यता है और मेरा सच्चा स्वरूप कभी जाना या अनुभव नहीं किया जा सकता। इस अर्थ में मेरा कोई अस्तित्व नहीं हैं – 'मैं' हूँ ही नहीं। गुरूजी, क्या यह ऐसा है?

एडजीः

हाँ, और ना। तुम धारणा संबंधी सोच समझ पर ज़्यादा ही ध्यान दे रहे हो।

एक तरह तो मैं कहूँगा हाँ, यह ऐसा ही है और धारणाओं के संबंध में आखिरी समझ को बढ़ावा दूँगा जो यहाँ अंकित तुम्हारे लिए अलग इशारे होंगे, लेकिन वह तुम नहीं हो। यह जायदाद, सूक्ष्म शरीर की है, वह भी एक धारणा ही है।

इससे भी गहरा 'कारण शरीर' है जो और भी गहरी शून्यता हैं। यहाँ कोई भी अनुभव मुमकिन नहीं है। सिर्फ पूर्ण अज्ञान (न जानना) है।

तुम एक विषय के तौर पर इन दोनों से परे हो।

अपने अस्तित्व की सबसे गहरी जानकारी उस चीज़ की जागरूकता से आती है जो तुम नहीं हो – यानि की चेतना, शून्यता, यह शरीर और समस्त संसार। तुम सिर्फ वो ही हो – सबसे गहरा 'मैं'।

लेकिन तुम्हें अभी 'कारण शरीर' से गुजरना होगा और अपना अर्जित सारा ज्ञान, सारी जानकारी पीछे छोड़नी होगी। मुझे यह फिर से दोहराना होगा कि यह एक धारणा है जो तुम्हें बाकी सारी धारणाओं से छुटकारा दिलाएगी। यह एक पुकार है – पूरी तरह से नासमझ बनने की और अपने मन को एक पत्थर जैसा बनाने की।

तुम जो कुछ भी अनुभव कर रहे हो वह असत्य है। यह मन और चेतना का खेल है। वास्तविक शून्यता में यह सब कुछ खो जाता है। तुम्हारा मन तुम्हारे साथ चमत्कारी खेल खेल रहा है, इन सब व्यर्थ चीज़ों और अनुभवों को लेकर। ये सार्वभौमिक रूप और सार्वभौमिक अनुभव हैं, पर फिर भी सिर्फ आते जाते रहते हैं।

इस शून्यता और दूसरी चीज़ों की व्याख्या मत करों, चेतना की परतों को खुलते हुए देखों और उसके साक्षी बनो, समझो और इसके दायरे से बाहर आओ।

सब कुछ कहने और सोचने के बाद जब तुम अपना प्रशिक्षण खत्म कर लोगे, तुम हमेशा स्वयं को एक विषय, अभी तुम विषय के तौर पर ही स्वयं के प्रति जागरूक हो, क्योंकि तुम अभी तक इस शरीर और संसार का अनुभव एक वस्तु की तरह करते हो।

सबसे बड़ा रहस्य यह है कि तुम यह संसार और चेतना नहीं हो। दूसरे अर्थ में वे तुम से ही निकलते हैं। ये दो अलग–अलग हल (समझ) हैं और स्पष्टतः विपरीत भी हैं। ये दोनों वाक्य देखने में सत्य हैं, लेकिन दो अलग स्तरों पर हैं।

राजीवः

यह शून्यता मन के दायरे में ही रहती है, जिससे सारी चेतना समाहित है, लेकिन वह तुम नहीं हो। यह तो सूक्ष्म शरीर की विशेषता है।

ठीक है। सारी चेतना सूक्ष्म शरीर है और इस क्षण जिसका मैं साक्षी हूँ वह सूक्ष्म शरीर के अनुभव हैं।

"इससे भी गहरा 'कारण शरीर' है, जो इससे भी गहरी शून्यता है। यहाँ कोई भी अनुभव मुमकिन नही हैं। सिर्फ पूर्ण अज्ञान ही है। (न ज्ञान, न अज्ञान)"

यह सूक्ष्म शरीर के दायरे से बाहर है और इसलिए चेतना के दायरे से भी। इसलिए जानना और अनुभव करना यहाँ पर संभव ही नही है। लेकिन गुरूजी, अगर मैं कुछ भी अनुभव नहीं कर सकता तो मुझे कैसे पता चलेगा कि मैं 'कारण शरीर' में हूँ। क्या यह वैसा ही है, जैसा गहन निद्रा की अवस्था, जहाँ मुझे अपना कोई अनुभव बिल्कुल याद नहीं रहता?

"अपने अस्तित्व की सबसे गहरी जानकारी उसकी जागरूकता से आती है – जो तुम नहीं हो – चेतना, शून्यता, यह शरीर और समस्त संसार। तुम सिर्फ वही गहन अवस्था हो सकतो हो।"

वाह! मैं तो सूक्ष्म शरीर से भी परे हूँ। एडजी, यह तो एक बहुत ही लम्बी यात्रा है। बहुत कुछ सीखना और समझना अभी बाकी है। मुझे पता है कि मैं चेतना के परे हूँ, इसलिए मैं वही नहीं हूँ, लेकिन विषय को वास्तव में जानने के लिए मुझे शून्यता के फैलाव और 'कारण शरीर' के दायरे से भी बाहर जाना होगा। ऐसा लगता है कि अभी बहुत कुछ करना बाकी है।

"सिर्फ चेतना की परतों को खुलते हुए देखो – उसके साक्षी बनों। इसके समझने के दायरे से परे जाओ।"

गुरूजी, मुझे ऐसा नहीं दिखता कि मैं प्रयत्न करके कहीं पहुँच जाऊँ, लेकिन मुझे 'कारण शरीर' और उससे परे के बारे में और अपनी समझ को बढ़ाना है। काफी लम्बे समय से मैं सिर्फ चेतनता की उस श्रेणी (स्तर) में हूँ जो सूक्ष्म और कारण अनुभवों को ही खोज रहा है।

एडजी, मुझे आगे का मार्गदर्शन कौन करायेगा और यह सब कैसे होगा?

क्या मैं इस क्षण जो कर रहा हूँ, 'शून्यता के फैलाव को ध्यान से देखना और उसका साक्षी बनना, इसे जारी रखूँ?' क्या इसके अलावा और भी कुछ है जिससे मैं इस दायरे के बाहर जा सकूँ, क्या मुझे ध्यान में और ज़्यादा समय लगाना चाहिए?

गुरूजी, आपसे विनम्र निवेदन है कि आप मेरा मार्गदर्शन करें। इसकी मुझे बेहद ज़रूरत है।

एडजीः

मैं तो तुम्हें जो कुछ भी बता रहा हूँ यह धारणाओं से मिले हैं कारण शरीर, सूक्ष्म शरीर इत्यादि। यह सब सत्य नहीं है। यह सारी समझ तो मन की है जिसे हमें पार करना ही होगा।

यह शब्दावली दुनिया की अलग–अलग ज्ञान और अज्ञान की श्रेणियों से मेल खाती हैं।

अभी तुम 'एकात्मता' के ज्ञान से भरपूर हो – लेकिन यह एक भ्रम है। फिर भी इसके दायरे से बाहर निकलने के लिए, यह ज्ञान और जानकारी महत्वपूर्ण हैं।

अगला पड़ाव है पूर्ण मूर्खता – जागरूकता, ज्ञान, जानकारी को पीछे छोड़ देना। कई बार यह मृत्यु जैसा लगता है – और यह 'मैं हूँ' की चेतनता की मृत्यु ही है। लेकिन तुम्हें कुछ भी नहीं होने का आदी होना पड़ेगा। अभी तो तुम शून्यता के खालीपन को जान रहे हों। लेकिन इससे भी गहन कुछ नहीं का मतलब तो सिर्फ और ज़्यादा अज्ञान और घना अंधेरा है।

यह कैसा होगा – इसका तुम एहसास कर सकते हो कम से कम वैसा जैसा कि वह मेरे लिए था – पद्मासन में बैठो और अपनी चेतना को सिर से नीचे की ओर अपने पेट की तरफ जाने दो। अपने उदर पर ध्यान केंद्रित करो। गहन निद्रा भी ऐसी ही दूसरी अवस्था है।

एक समय तुम्हें अपने चेतना केन्द्र का, उदर में गिरने जैसा एहसास होगा, और बस गिरने से जरा पहले तुम्हें लगेगा जैसे तुम्हारा मन चट्टान जैसा हो गया है। तुम्हारी प्रकाशित चेतना की जागरूकता खो जाएगी। तुम ऐसी अवस्था से गुजरोगे जैसी कि निद्रा की अवस्था होती है, जहाँ कुछ भी नहीं है। वहाँ पर 'तुम' नहीं हो, ना ही चेतना, ना ही अनुभव।

जैसे ही तुम्हारा मन, तुम्हारे उदर में 'गिर' जाएगा वैसे ही तुम हर चीज़ से एक हो जाओगे। यह सारा संसार तुमसे भिन्न नहीं होगा। तुम्हारे शरीर और इस संसार में कोई भी भेद नहीं होगा। शरीर गायब हो जायेगा और तुम पूर्ण समाधि में यह संसार ही बन जाओगे। यह तुम्हारी 'झलक अवस्था' है, जिसे तुम चरम (अंत) तक ले जाओंगे। यह ऐसा है कि मन अब कोई काम नहीं कर रहा, केवल साक्षी है। अब वह वैसा ही है जैसा कि मन के आने के पहले था – नाम, रूप, ज्ञान आदि के जगत से परे, अछूता।

वह समय जब तुम्हारा मन गिर रहा होगा, तुम्हारी विस्मरणशीलता की अवस्था होगी, जो तुम्हें बार–बार अनुभव करनी होगी। 'तुम' इसमें से गुजरोगे – एक की अवस्था ज्ञान और चेतना की अवस्था से अज्ञान तक और फिर उस अज्ञान से हर चीज़ से एकात्मता तक। तुम जानते हो यह राह की स्मृति है।

यह अवस्था बहुत–बहुत महत्वपूर्ण है। इसको रोज़मर्रा की जिन्दगी में जरूर जीना चाहिए। कुछ भी न जानना, न कोई सिद्धांत होना और न किसी चीज़ की चाहत का होना। यह एक तरीका है, इस संसांरिक दुनिया को खत्म और पार करने का।

तुम अभी चेतना के बहाव में बहुत मजा ले रहे हो और मुझे उसे अभी रोकना नहीं है। बस इतना जानो कि यह वास्तविक नहीं बल्कि काल्पनिक है। विस्मरणशीलता भी काल्पनिक है। यह शरीर, यह अवस्थाएँ भी सच नहीं हैं। यह तो तुम्हारी प्रक्रिया हैं। यह उतना ही वास्तविक है जितना एक सपना।

वैसे जो कुछ भी मैंने कहा है, चेतना केंद्र का उदर में गिरने के संबंध में, उसे तुम चेतना केंद्र का हृदय केंद्र पर गिरना भी समझ सकते हो। मैंने ज़ैन तकनीक का अभ्यास किया है, इसलिए मैं हृदय केंद्र के बजाय, उदर पर ज़ोर दे रहा हूँ।

राजीवः

वाह! आपने तो आत्मबोध और वास्तविक विमुक्ति का सबसे बड़ा रहस्य खोल दिया है। बहुतों को लगता है कि यह एक 'अज्ञान' या न 'न जानने की' अवस्था है लेकिन आपने, यह क्या हैं और कैसे होता है, का भी रहस्योद्घाटन किया है। मैं इतना प्रभावित हूँ कि मेरे पास शब्द ही नहीं बचे हैं। आप विस्मयप्रेरक हो, गुरूजी।

एक साधक जानने से 'न जानने' में और न जानने से 'जानने' में आने की क्रिया बार–बार करेगा। बार–बार ऐसा करने पर भी हमें यह ज्ञात होता है कि हम इस जानने और न जानने से भी परे हैं। यह सब एक साथ समझना बहुत ही कठिन है, अब भी!

एडजीः

वास्तव में 'कारण शरीर' को तो हम अपने आप मन के अनुभवों से देख सकते हैं। यह उदर की तकनीक सिर्फ तुम्हें शून्यता को स्पष्टता से और जल्दी समझने में मदद करती है। यह महत्वपूर्ण नहीं है।

राजीवः

अब मुझे इसका ज्ञान तो है, लेकिन मुझे इस तक अपने आप पहुँचना है। आप कहते हैं कि मैं चेतना को, पूरी तरह जानने के बाद भी उससे एकात्म होकर खूब मजे लूट रहा हूँ। यह सौ फीसदी बच है। उस 'मैं हूँ' अवस्था में रहने की कोशिश करूँगा। मैं उसे आपने पास पकड़ कर रखूंगा जैसे महाराज गीता में कहते हैं और वह ही ठीक समय आने पर, मुझे जहाँ ले जाना है, वहाँ ले जाएगे।

मैं अब आपको तब लिखूंगा, जब मेरे पास कुछ नया कहने को होगा। मैं आपको जानकर (आपकी पहचान से) बहुत ही भाग्यशाली हूँ, गुरूजी।

राजीवः

तो एक साधक अपने इन तीनों अवस्थाओं का उठना–गिरना देखता है और तब जानता है कि वह इनसे परे है। क्या मेरा यह समझाना सही है?

एडजीः

तुम कोई पदार्थ नहीं हो लेकिन एक पदार्थहीन पदार्थ वहाँ है। यह विषय वस्तु है लेकिन उस तरह नही जैसे यह संसार होता है।

यह हाने या न होने की धारणाएँ तो उन पर लागू हो सकती है जो दिखाई देते हों जिन्हें हम ध्यान से देख सकते हैं। लेकिन तुम देखने वाले वह विषय तो अस्तित्व और शून्यता होने के सभी गुणों से परे हो।

तुम इसको समझने की कोशिश मत करो। यह तुम्हें तब समझा में आएगा, जब समय उसके लिये तैयार होगा।

राजीवः

बौद्धिक रूप से यह सारी शिक्षा जो मैं आपसे सीख रहा हूँ समझने में थोड़ी मुश्किल है। आज जो ज्ञान आपने मुझे दिया है उससे मैं विस्मयाभिभूत हूँ।

मेरी जानकारी बहुत ही कम है। इतनी कम जितनी कि इस विषय पर लिखने वालें जानते है।। बहुत से गुरू सिर्फ धारणाओं या ऊपरी ज्ञान के बारे में बात करते हैं, लेकिन आप जो कह रहे हैं वे तो हर चीज़ से अलग और परे है। यह किसी की कल्पना से भी परे है।

मैं हमेशा ताज़्जुब किया करता था कि आपने अपना प्रचार अब तक सीमित ही रखा है, इसे कभी भी संसार में फैलाया क्यों नहीं। लेकिन अब मुझे यह एहसास हो रहा है कि शायद आपने ऐसा इसलिए किया है क्योंकि यहाँ ऐसे बहुंत ही कम लोग हैं, जो इन बातों को समझेंगे। गुरूजी, आपको सारे संसार में इसका रहस्योद्घाटन करना चाहिए, भले ही उन गिने–चुने लोगों के लिए हो जो ये बातें समझ सकते हैं, नहीं तो वे भी मेरी तरह इधर–उधर ही भटक कर समय व्यर्थ करेंगे।

एडजीः

हाँ, यह शिक्षा बहुत ही दुर्लभ है। यह उन योगियों या ज़ेन शिष्यों के लिए है, जिन्होंने साधना का अभ्यास किया हो। बहुत से पढ़ने वालों को ये बाते समझ नहीं आएंगी। निसर्गदत्त ने इन सब को तो गुरू शिष्य परम्पराओं को निभाते–निभाते सीख लिया था लेकिन उन्होंने अपने सतसंगों में इन विषयों के बारे में ज़्यादा बात नहीं की है। लेकिन दीक्षा लेने के बाद उन्होंने तीन साल तक इस मुद्दे के बारे में सोचा ज़रूर होगा और कोई खोज भी की होगी। वास्तव में इनको जाने बिना अपने गुरू से तो उनकी किताब Prior to conciousness और अन्य किताबों को समझना बहुत कठिन कार्य होगा। लेकिन निसर्गदत्त के गुरू ने ये सब तो लिखी हैं और उनके धर्म भ्राता रणजीत ने भी इनका विस्तारपूर्ण उल्लेख किया है। मुझे लगता है,

निसर्गदत्त महाराज ने इस सारे ज्ञान और जानकारी पर इसलिए विशेष ज़ोर नहीं डाला क्योंकि उन्हें पता था कि आखिरकार ये बातें अवास्तविक हैं और पूर्व धारणाओं से घिरी हुई हैं। ये धारणाएँ तो किसी और समय की हैं, लेकिन फिर भी यह तुम्हें और दूसरे योगियों के लिए उपयोगी हैं, क्योंकि आप सबको चेतना के अलग–अलग पहलुओं की जानकारी है। बाद में हर चीज़ के खत्म हो जाने के बाद, तुम सिर्फ तुम ही हो सकते हो। ज़ेन में इसे वापस बाजार में आना कहते हैं।

राजीवः

आज का ध्यान बहुत ही अच्छा था, खासतौर से 'एकाग्रता' के संदर्भ में जिसे मैं इस क्षण अनुभव कर रहा हूँ। एक घण्टा तीस मिनट तक पूरा ध्यान शून्यता पर केन्द्रित करने के बाद, मुझे उठना पड़ा क्योंकि मेरे पैर एक स्थिति में दुखने लगे थे। अगर मेरा ध्यान पैरों की तरफ नहीं होता तो शायद आज मैं हमेशा के लिए ध्यान में बैठ जाता।

साधना से उठने के बाद मैं यह सोचने लगा कि ऐसी क्या चीज़ है जो मुझे शून्यता की ओर इस तरह खींचती है।

आज तो वह नशा हद से ज़्यादा है। मैं इन आँखों से देख रहा हूँ। वह रंग, वह उजाला, वह आवाज मेरे होने पन से पूरी तरह जुड़ी हुई लग रही हैं।

यह चेतना मैं हूँ, 'मेरे होने' की अवस्था से कितना प्रेम करती है। ध्यान केन्द्रित करने में कोई प्रयत्न नहीं करना पड़ रहा है। मैं ही ध्यान हूँ –जैसे! मैं ही एकाग्रता हूँ।

मैं हर चीज़ को बिना पलक झपकाये आँखें स्थिर करके देख पा रहा हूँ। आज मैं अद्भुत चमत्कारी दुनिया में हूँ।

आह! यह सब आप ही कर रहे हैं।

एडजीः

मैं कुछ नहीं कर रहा हूँ। यह मेरी देन नहीं है। जब तुम स्वतंत्र हो तो तुम अपना अस्तित्व किसी भी चीज़ से जोड़ सकते हो फिर वह, शरीर, अहम, चेतना, संसार, शून्यता या फिर परम तत्व ही क्यों न हो। यह एक भेंट है। इसका मज़ा लो। कई लोगों को यह वार्तालाप बिल्कुल समझ में नहीं आएगा। वे इसलिए नहीं समझेंगे क्योंकि वे साधना तो करते ही नहीं है। उन्हें तो आखिरी पन्ने पर तीव्रता से पहुँचना है, जहाँ उन्हें यह बताया जाएगा कि ऐसा कुछ नहीं है जो उन्हें करना है। बहुत से आध्यात्मिक लोग एक ऐसे आभासी पथ से प्रभावित हो जाते हैं जो कहता है कि परमसत्य तक पहुँचने के लिए उन्हें सिर्फ किताबें पढ़ने और सतसंग सुनने की ज़रूरत है। लेकिन साधना के नियमित अभ्यास के बिना तो वे शक्तिहीन हो जाते है। उन्हें बिल्कुल भी बोध नहीं होता अनंत का और चेतना के खेलों का।

फोटो

भाग – 3

राजीवः

गुरूजी, मेरी प्रगति के बारे में!
एडजी, प्रगति के नज़रिए से देखा जाए तो मेरे पास ज़्यादा कुछ लिखने को नहीं है फिर भी ऐसी कुछ चीज़े है जो मैं आपको बताना चाहता हूँ।

मुझे विस्तार से लिखने की आदत है और ध्यान के खत्म होते ही, मैं कई महत्वपूर्ण बातें लिख लेता हूँ। चाहे वह अनुभव पहले जैसा हो या चाहे मैं एक ही पंक्ति लिखूँ, अब मुझे इसे लिखने की आदत सी पड़ गई है।

(1) मुझे अपनी आत्मा (हृदय केन्द्र) और सामने दिखने वाली शून्यता के साथ एक जबरदस्त एकात्मता लगती है।

हर साधना के सत्र के बाद ऐसा लगता है कि इस विरह में लीन हृदय को एकात्मकता की ज़रूरत है। ज़्यादातर एक गहन साधना के सत्र के बाद मेरा दर्द या आत्मिक प्यास बुझ जाती है। यह सब अपने आप बिना प्रयत्न के होता है और अब मैं सिर्फ अपने आत्मिक चेतना के बहाव को मेरे आगे दिखती हुई शून्यता के बहाव से मिलते हुए देखना हूँ। सब कुछ अब चेतना की कभी न खत्म होने वाली धारा है।

यह एकात्मकता, प्रभाव में नाटकीय तो नहीं है, जैसे कि "मैं हूँ" की अनुभूति का आकाश में फैलना पर यह एक धारा के समान ज़रूर है जैसे कि एक नदी दूसरी से मिल रही है। मैं सिर्फ एक साक्षी हूँ, इन सब घटनाओं का।

(2) कई बार वह नाद या अन्दरूनी आवाज़ बहुत तेज होती है और मैं इसकी तरफ चुम्बक जैसा खिंचा चला जाता हूँ। कई बार मुझे मन में एक चीख सी सुनाई देती है और ऐसा लगता है कि किसी ने मेरे मन में एक विद्युतीय यंत्र लगा दिया है जो पूर्ण रूप से मेरे शरीर और दिमाग की हलचल को रोक देता है। ऐसी शांति होती है, जैसे कि शरीर और दिमाग की मशीन ने काम करना बंद कर दिया हो।

मैं एक क्षण के लिए बेहोश हो जाता हूँ और बहुत बार उठने पर मेरा सिर आगे की ओर झुका हुआ होता है। लेकिन इसमें कोई स्वप्न या स्वप्नचित्र नहीं है। मन / चेतना कुछ ही क्षणों बाद वापिस आ जाती है और मुझो स्वप्न या जागृत अवस्था में शून्यता का साक्षी बनने का बोध होता है। मुझो उस चीख जैसे शोर का और मन पर पड़ रहे उसके प्रभाव की कोई जानकारी नहीं है।

(3) आज मैंने गौर किया कि मैं अपने ध्यान के दौरान स्वप्नचित्र में सक्रिय भाग ले रहा हूँ। मुझे यह पता था कि यह एक स्वप्न है मैंने कुछ देर के लिए उसमें भाग लिया और फिर जागरूक अवस्था में आ गया। हालांकि इसमें मेरी कोई मर्जी नहीं थी, यह सब तो चेतना ही कर रही है।

(4) कई बार जब नाद ज़ोर से सुनाई पड़ता है तो मेरे मुख पर अज़ीब सी (कंपन से भरी हुई) खुजली होती है और मैं इससे बहुत परेशान हो जाता हूँ। मैं इस पर गौर नहीं करता, परंतु यह बहुत परेशान करती है।

कार्यालय के दौरानः

बहुत बार नाद बहुत ज़ोर से प्रकट होते हैं। यह कभी भी किसी भी समय प्रकट हो रहे हैं। उस दिन जैसे ही नाद प्रकट हुआ मैं दीवान पर लेट गया और मैंने यह समझा कि शरीर ही अपने आप में चेतना है। मैं एक आधी निद्रा और आधी जागरूक अवस्था में था और मुझे लगा कि मेरे पैर और शरीर ऊपर की ओर उठ रहे हैं। कोई शरीर नहीं था, यह सिर्फ एक भ्रम है। मेरे शरीर और उसके बाहर बहती हुई चेतना में कोई अंतर नहीं था। यह अंतरिक्ष में फैली हुई चेतना का ही एक भाग है।

गुरूजी, मैं अपनी ओर आते हुए माँ के प्रेम के बहाव का आनन्द ले रहा हूँ। कई बार तो आनन्द इतना ज़्यादा होता है कि मेरा सिर एक ओर झुक जाता है और ऐसा लगता है कि मैं छितरी हवा में चल रहा हूँ। और कई बार यह सुनामी की हलचल के बाद के शांत महासागर जैसा लगता है, जो मुझे बहुत प्रिय है।

मुझे पता है यह सब सच नही है, और मुझे इस भ्रम को पार करना होगा। लेकिन गुरूजी, मैं माँ की ओर बड़ी बेबसी से खिंचा चला जा रहा हूँ। मैं उन्हें जाने नहीं दे सकता और न ही वह ऐसा चाहती है। मैं सिर्फ

उनके साथ इस बहाव में बहना चाहता हूँ। गुरूजी, मुझे पता है कि इस ओर कुछ खास प्रगति नहीं हुई है। क्षमा चाहता हूँ गुरूजी, मैं इस बारे में बहुत ही कम सोच रहा हूँ।

आप और माँ इस बात का निश्चय करेंगे कि यह कब होगा।

एडजीः

तुम बिल्कुल सही राह पर हो, राजीव। सिर्फ विश्राम करो, आनन्द लो और खेलो। तुम्हें अभी चेतना के बहुत असीम रूप अनुभव करने है। परंतु उससे प्रभावित मत होना, जैसा कि तुम अभी हो रहे हो। यह समय जो बीत रहा है एक चमत्कारी और भ्रमों से भरपूर समय है।

यह अच्छा है कि तुम इन सब का अभिलेख रखते हो। क्योंकि एक दिन तुम खुद एक शिक्षक बनोगे, तब यह अभिलेख तुम्हारे काम आएँगे और ये दूसरों के मार्गदर्शन के लिए छपवाए भी जा सकते हैं।

राजीवः

गुरूजी, पिछली रात एक सपने ने मुझे हिला दिया। मैं सपने में एक बहुत ही जालीम और भीड़ से भरी हुई जगह देख रहा था। यह बहुत ही बदबूदार और दिल को दहला देने वाले दृश्यों से भरी जगह थी।

मैंने हर प्रकार के जानवर परस्पर बंधे हुए देखे, कुत्ते, तोते, गधे, हाथी, बिल्ली, गाय, पक्षी और इन्सान भी, जो अपने कटने का इंतजार कर रहे थे। यह सब किसी का भोजन बनने वाले थे। सब ज़ोर–ज़ोर से रो रहे थे और कह रहे थे कि – आप हमारा इस्तेमाल खाने के लिए कैसे कर सकते हैं?

मैं बिल्कुल टूट गया, गुरूजी। मुझे आपको लिखते हुए भी उन जानवरों का दर्द महसूस हो रहा है।

हममें से बहुत से लोग उनके कटने के बाद उन्हें खरीद रहे थे। मैं उनको रोकने के लिए कुछ भी नहीं कर सका। सिर्फ उनका दर्द और दुख महसूस करके रोता रहा।

यह जानते हुए भी कि यह सपना है, मुझे उनमें और आप में कोई अंतर महसूस नहीं हुआ।

शायद चेतना मुझे वहॉ किसी कारण से ले गई होगी।

एडजी, समाधि और एकाग्रता के इन 2 महीनों से पहले मैं मांसाहर किया करता था।

इन समाधि के लिए लगातार साधना करने के बाद मैंने स्वयं ही किसी भी प्रकार का मांसाहार करना त्याग दिया था। जब एक बार समाधिओं के बीच में मैंने मुर्गी खाई तो मुझे उल्टी आ गई।

मुझे ऐसा पहले कभी भी नहीं लगा था कि चेतना का इससे कोई लेना–देना है। इस सपने के बाद और मेरे मांसाहारी भोजन को त्यागने के बाद, अब मुझे अपने आपसे उस समय के खाने के प्रति घृणा होती है।

मुझे नर्क का कोई ज्ञान नहीं है और यह पता भी नहीं है कि वास्तव में वह होता भी है या नहीं। मेरे देखें सपने का कारण असहाय जानवरों और इन्सानों से एक जैसा बर्ताव करने की शिक्षा देनी था। इसने मुझे हिला दिया है और मैं अभी तक दर्द महसूस कर रहा हूँ।

क्या आपको लगता है कि साधना के शुरुआती दौर में ही साधक को मांसाहारी भोजन त्याग देना चाहिए। ताकि उच्च श्रेणी की साधना में मेरे अनुभव जैसा विघ्न न आए?

एडजीः

मैं कल ही तुम से पूछने वाला था कि तुम शाकाहारी हो या नहीं। ऐसा लगता है कि मैंने तुम्हें यह सपने में पूछ लिया।

अब तुम समझोगे कि मैं जानवरों का रक्षक क्यों हूँ। वह जो जानवरों को मारकर खाते हैं उनमें एक असाधारण अपराध बोध होता है। जब तुम यह खाना बंद कर देते हो तो अपने आप ही अच्छी चीज़ होने लगती है। हॉ, शाकाहारी होना बेहद ज़रूरी है। रॉबर्ट ने इसपर बहुत जोर डाला था। उन्होंने कहा था कि मांस खाने से

एक इन्सान प्रगति न करके पीछे हो जाता है। वह अपने अन्दर एक दर्द भी भर लेता है। शाकाहारी होना बहुत ज़रूरी है, इस पथ पर प्रगति के लिए।

राजीवः

गुरूजी, मुझे थोड़ी स्पष्टता चाहिए। इन दिनों ध्यान एकदम से लग जाता है। जैसे ही मैं आसन में बैठता हूँ, शून्यता से ढक दिया जाता हूँ। यह बिल्कुल नाटकीय नहीं है, सिर्फ यह है कि एकात्मकता अब बहुत ही कोमल और मधुर हो गई है। यहाँ कोई तनाव नहीं है, चेतना सब कुछ है, और मैं चेतना हूँ। यह एकात्मकता अति सुंदर है। यह मेरा शून्यता के प्रति प्रेम है।

मेरे सवाल

(1) जैसा आपको पता है गुरूजी, मैं ध्यान में बीच में स्वप्न अवस्था और जागरूक एकात्म अवस्था में घूमता हूँ। आजकल मैं तुरन्त ही स्वप्न अवस्था को पकड़ लेता हूँ उसे देखता हूँ और फिर जागरूक अवस्था में आ जाता हूँ। आज मैंने देखा कि जागरूक अवस्था में पहुँचने के बाद, नाद स्वर और तेज सुनाई देने लगते और मैं गहराई से, शून्यता की ओर खिंचता चला गया।

(2) हर स्वप्न अवस्था जो खत्म होती है, मुझे शून्यता की ओर ले जाती है और तेज़ रोशनी रूक–रूक के दिखती है जो एक आनन्द रोशनी की दीवार जैसी लगती है। यह तब गायब हो जाती है, जब मैं स्वप्न अवस्था में चित्र बनते हुए देखता हूँ। जैसे ही मैं उस चित्र को देखता हूँ मुझे यह पता चलता है कि मैं स्वप्न अवस्था में हूँ और मैं जागरूक अवस्था में चला जाता हूँ। तब मैं आल्हादित अनन्त शून्यता का अनुभव करता हूँ। उस शीतल शून्यता का जिसमें रूक–रूक कर तीव्र रोशनी भी दिखाई देती है।

(3) तकरीबन एक घण्टे के ध्यान के बाद और एक ही आसन में साधना का अभ्यास करने से शरीर भारी से भारी होता जाता है। आज मुझे लगा कि मैं शरीर का संतुलन खो बैठूँ। ऐसा नही है कि मेरा दिमाग शरीर में था, लेकिन एक घण्टे बाद मेरी जागरूकता आज मुझे अपने शरीर से खींचती हुई ले आई।

(4) मेरा ध्यान पूरा नहीं हुआ था, इसलिए मैं अपने ध्यानाभ्यास में ही लेट गया। वहाँ पर भी मैं स्वप्न अवस्था और जागरूक अवस्था में घूम रहा था।

तो एडजी क्या ऐसी परेशानी की हालात में मेरा लेटना ठीक है? क्या मुझे 45 मिनट का ध्यान पूरा करना ही चाहिए?

एडजीः

अपने आप से भी विनम्रता बरतो। अगर चीज़े ज़्यादा मुश्किल हो जाएं तो रूक जाना। मेरे विचार में इसके बाद तुम्हें गहरी निद्रा अवस्था में ले लिया जाएगा, जो तुम्हारे शरीर से जुड़ी हुई है। चिंता न करो, यह सिर्फ एक अनुमान है।

यह मेरे साथ सालों तक हुआ था। दोपहर को रोज एक या दो घण्टों मुझे बेहोशी खींच लेती थी। मैं बिल्कुल बेहोश हो जाता था – निद्रा में रहता था। फिर एक तेज़ सफेद रोशनी प्रकट होती और मैं बड़ी ही असहाय होकर उसमें गिर जाता लेकिन वह निद्रा ज़रूर 'कारण शरीर' था।

उस समय मैं लाइब्रेरी में काम कर रहा था और एक रात एकांत जगह छुपने के लिए ढूँढ रहा था, जहाँ मैं कई घण्टे किसी के बिना देखें बेहोश हो जाऊँ। यह एक बहुत मज़ाकिया बात थी।

लेकिन तुम स्पष्टीकरण में खो मत जाना। वाकई में वो कोई सूक्ष्म शरीर और कारण शरीर होता ही नहीं है। ये धारणाएँ इस मायावी दुनिया के एक व्यापक चमत्कार का ही वर्णन करती हैं। लेकिन जो कुछ हुआ या होने वाला है उससे कतई मत डरो। यह सब और वे सुंदर समाधियाँ भी एक भ्रम है। मेरे लिए अब ये महत्वपूर्ण नहीं है। अब किसी चीज़ की ज़रूरत नहीं है ना किसी चीज़ के पीछे भागना ही है।

राजीवः

गुरूजी, कई बार मुझे इस बात का डर लगता है कि मैं नियंत्रण खो बैठूँगा। ध्यान के दौरान ही नहीं बल्कि जागरूक अवस्था में भी। मेरा दिल खुशी से ज़ोरो से घड़कता है, जैसे मैं इसे होते हुए देख रहा हूँ। हर धड़कन एक मंदिर के घण्टे की तरह मेरी अंतरात्मा को एक असहाय पर असीम आनंद में ले जाती है।

इस अवस्था का वर्णन करना बहुत मुश्किल है। उस क्षण मुझे सिर्फ ऐसा लगता है कि मैं बिल्कुल अकेला, शांत और एकांत वातावरण में बैठ जाऊँ। लेकिन ऐसा अक्सर नहीं होता, एक छोटी सी आवाज़ भी उस अवस्था में हलचल मचा देती है।

कार्यालय में जब पिताजी और व्यवसाय सहयोगी कहीं चले जाते हैं तो मैं इस अवस्था में लेट जाता हूँ। अन्यथा मुझे ज़बरदस्ती बैठे रहना पड़ता है। लेटने से इस अवस्था में थोड़ा आराम सा मिलता है। यह एक जबरदस्त आत्मसमर्पण और बेबसी की अवस्था है।

एडजीः

यह एक बहुत ही भव्य अवस्था है। मैं तो ध्यान में रूकावट पड़ने पर बहुत ही चिढ़ जाता था। लेकिन सारे अनुभव और अवस्थाएँ गुज़र ही जाती हैं। और इस समझ के साथ हर अवस्था और अनुभव में एक आत्मसमर्पण और शांति आ जाती है। तुम्हारी असली अवस्था तो वह पृष्ठभूमि है, अनुभव तो आते–जाते रहते हैं। यह नाम पृष्ठभूमि भी गलत है क्योंकि वह एक स्थान, दिशा और और अनुभव को बतलाता है। यह कहना सही होगा कि यह तो सारे अनुभव और चेतना का आधार है।

राजीवः

आज रात मैंने मौत जैसा अनुभव किया।

मैं आपको अपने इस अनुभव के बाद रात के डेढ़ बजे लिख रहा हूँ।

आज पलंग पर ही थोड़ी–सी ही साधना करने के बाद मैं 12 बजे गहरी नींद में सो गया।

और फिर अचनाक ही मैं एक अवस्था में उठा – वह ऐसी अवस्था थी जिसमें मुझे लगा कि मैं मर रहा हूँ।

एक तरह से यह मानसिक दिशाहीनता थी बहुत डरावनी। मुझे लगा कि जो रहा हा है, उस पर मेरा कोई नियंत्रण नहीं है। मेरे होने का एहसास भी दाँव पर लगा हुआ था। मुझे स्पष्ट रूप से याद है कि मुझे यह अनजानी स्थिति बिल्कुल पसंद नहीं आई क्योंकि क्या हो रहा हैं ऐसा अर्थ बना हुआ था। मैंने बड़ी स्पष्टता से यह महसूस किया कि मैं मरनेवाला हूँ।

फिर मैंने अपना हाथ अपनी पत्नी की ओर किया और बार–बार कहा, मुझे ज़ोर से पकड़ो, मुझे जल्दी पकड़ो।

उसने अपनी नींद में ही मेरा हाथ पकड़ लिया और उसी क्षण मैं फिर जागरूक अवस्था में आ गया। मैं दुविधा में उठा और वास्तव में जो कुछ हुआ था, उसे याद करने की कोशिश करने लगा। मुझे अभी तक अचंभे और दिशाभ्रम का एहसास हो रहा था। गुरूजी, इन सबका क्या मतलब है?

एडजीः

यह तो एक बहुत अच्छी विकास की अवस्था है। आख़िरकार तुम्हें भय की अनुभूति हो रही है। तुम्हारा अहं जो इस पूरे प्रक्रिया को देख रहा है, भयभीत हो रहा है। यह अहं भी एक अजीब चीज़ है। यह वास्तविकता में नहीं है, लेकिन जब प्रकट होती है तो एक हस्ती का रूप ले लेती है और फिर ऐसा लगता है कि वह हस्ती ही अपनी मृत्यु का अफसोस मनाती है। वास्तविक में सिर्फ डर की भावना किसी खास संदर्भ में जागती है, थोड़ी देर जिन्दा रहती है और फिर शून्यता में गुम हो जाती है। वैसे ही जैसे सारी भावनाएँ और विचार गुम हो जाते हैं। जब तक तुम यह सोचते रहोगे कि यह अहं सच्चा है तब तक वह तुम्हारे मन और तुम्हारे शरीर के व्यवहार को नियंत्रित करेगा। जब तुम इसके आर–पार देख सकोगे, यह नष्ट हो जाएगा।

तब तक भय से भागो मत, उसे खुले दिल से स्वीकार करो। यह और कुछ नहीं बल्कि दिल में उठी हुई एक और हलचल है।

भय आएगा, आतंक भी, लेकिन वह तो अस्तित्वहीन अहम है, जो मरेगा, तुम नहीं। उसे मरने दो। मरने से मेरा मतलब है तुम उसके आरपार देखो, वह असल में ही नहीं है। उसका तुमसे कोई लेना–देना भी नहीं है। तब एकदम से उसका प्रभाव कम हो जाएगा। कई बार यह सब अकेला नाटकीय अनुभव जैसा बन कर आता है, एक मृत्यु जैसा अनुभव।

राजीवः

गुरूजी, यह बहुत भयानक है। ऐसा क्यों लगता है कि मैं वास्तव में मर गया? मैं तो जागा हुआ था जब यह एहसास हुआ। अब मुझे याद आ रहा है कि यह पहले भी हो चुका था। उस समय भी मैं अपने आसन से दिशा भ्रमित होकर उठ गया था।

गुरूजी, क्या इसका मतलब है कि मैं मृत्यु अवस्था को जानने से डरता और कतराता हूँ, मुझे लगता है कि मैं मर ही जाऊँगा।

क्या एक गहरी निद्रा की अवस्था ही कारण शरीर का अनुभव है, जो वास्तव में एक अनुभवहीन मृत अवस्था है।

एडजीः

तुम्हें यह इसलिए लग रहा है राजीव, क्योंकि 'तुम' वास्तव में मर रहे हो। तुम्हारा शरीर नहीं मर रहा न ही तुम्हारी आत्मा मर रही है। तुम जिसे राजीव का शरीर मान रहे हो उसकी मृत्यु हो रही है – राजीव होने के अस्तित्व की मृत्यु है यह।

यह अहम की असली मृत्यु है, लेकिन शरीर बच जाता है और अपने आत्मा का गहरा एहसास भी। सिर्फ विचार धारा की पहचान की मृत्यु हो जाती है, वह पहचान जो हमारे विचारों से बहती है, हमारे शरीर से बहती है।

तुम भय को देखो, उससे भागो मत। यह कुछ भी नहीं है। तुम भी कुछ भी नहीं हो। यही तुम्हारी पहली सच्ची परीक्षा है।

अगर तुम अब भी असफल हुए तो अहम की मृत्यु पीछे से आकर उस वक्त तुम्हें अपनी चपेट में ले लेगी, जिस वक्त तुम उसकी अपेक्षा तक नहीं कर रहे होगे।

यह सत्य नहीं है। कुछ भी सत्य नहीं है। एक खेल है। बस, इनके मज़े लेते जाओ।

अहम् की मृत्यु मन स्तर पर होती है। यह अहम की सच्ची और वास्तविक मृत्यु है जो सिर्फ विचारों का एक गहरा गुब्बारा है। यह गुब्बारा जब फूट जाता है तो तुम मुक्त हो जाते हों। तुम्हारी पहचान में बदलाव आता है – पहले तन–मन से सबकुछ पर और फिर सबकुछ से कुछ भी नहीं पर।

तुम अभी तक अपने तन और मन से ही पहचान बना पाये हो। कभी न कभी इस पहचान को हमेशा के लिये बदलना होगा। साधना ही तुम्हें वह रास्ता दिखाएगी।

तुमने जरूर महर्षि रमण के मृत्यु के अनुभव के बारे में सुना होगा या पढ़ा होगा, वे जिस निष्कर्ष पर पहुँचे थे, उसपर भरोसा न करना, बल्कि उनके अनुभवों पर ध्यान देना। यह **निम्नलिखित** वाक्यांश माईकल जेम्स की किताब Happiness and the Art of Being में से है। यह http://happiness of being.com से डाउनलोड किया जा सकता है।

"एक दिन सन 1896 में जुलाई के महीने में रमण को एकदम से ही सच्चे आत्म–ज्ञान का अनुभव हुआ। वे उस वक्त सिर्फ सोलह साल के स्कूली छात्र थे। दक्षिण के मदुराई में वह अपने चाचा के घर एक कमरे में अकेले ही बैठे थे, तब उनके मन में बिना किसी कारण के, मृत्यु का एक भयानक डर जागा। इस डर को दिमाग से भगाने की बजाय जैसा कि शायद हम सब करते हैं, उन्होंने मृत्यु के भय की सच्चाई को जानने के लिये खोज शुरू कर दी।"

"ठीक है मृत्यु आ गई है! क्या है यह मृत्यु? वह क्या है जो मर जाता हैं? यह शरीर मरने वाला है – तो इसे मरने दो" ऐसा निश्चय करके वे एक मृत शरीर की तरह लेट गए, स्थिर और निःश्वास से। उन्होंने अपना

ध्यान अंदर की ओर कर लिया था, मृत्यु उनका वास्तव में क्या करेगी यह जानने की इच्छा की। उन्होंने बाद में उस सच को, जैसा उन्होंने समझा, इस तरह बताया।

"यह शरीर मर गया है। अब यह शमशान घाट ले जाकर जला दिया जाएगा और राख में बदल जाएगा। लेकिन क्या शरीर के नाश के साथ–साथ, मैं भी नष्ट हो जाऊँगा? क्या यह शरीर वास्तव में 'मैं हूँ'? हालांकि यह शरीर अब बेजान पड़ा है, लेकिन मुझे पता है कि 'मैं हूँ'।" मेरे ऊपर इस मृत्यु का कोई असर पहीं पड़ रहा है और मेरी आत्मा शीशे की तरह स्पष्ट चमक रही है। इसलिए मैं, यह शरीर नहीं हूँ जो मर गया है। मैं तो 'मैं हूँ' जो अविनाशी हूँ। सारी चीज़ों में, सिर्फ मैं ही सच हूँ मृत्यु से परे हूँ, हमेशा जीवित रहता हूँ। यह मृत्यु जो इस शरीर में हुई है, मुझे प्रभावित नहीं कर सकती।

हालांकि उन्होंने इस अनुभव का वर्णन इतने सारे शब्दों में किया, उन्होंने यह बताया कि यह सच्चाई तो एक ही क्षण में उन पर उतर आई थी। यह ना किसी तर्क–वितर्क का नतीजा था और न ही वाणी रूप में विचार थे। यह तो एक सीधा अनुभव था जिसमें दिमागी कसरत की कोई आवश्यकता नहीं थी। उनका भय इतना प्रबल था और मृत्यु के बारे में सच जानने की इच्छा इतनी तीव्र थी कि बिना कुछ सोच विचार के ही उन्होंने अपना ध्यान अपने मृत बेज़ान शरीर से हटाकर, अपने सबसे भीतरी केन्द्र पर लगा लिया, जो उनकी सच्ची, शुद्ध और अद्वैत आत्म चेतना 'मैं हूँ' थी। क्योंकि उनका ध्यान इतनी तीव्रता से उनके होने की चेतना पर लगा कि चेतना ने अपने द्वार तत्क्षण ही प्रत्यक्ष ज्ञान की रोशनी में खोल दिए। ऐसा ज्ञान जो निश्चित सत्य है – जिसके होने पर कोई शक नहीं किया जा सकता।

और इस तरह श्री रमण महर्षि ने अपनी शुद्ध परम चेतना 'मैं हूँ' खोज ली, जो एक है, असीम है, अविभक्त और अद्वैत, पूर्ण है। वह ही एक वास्तविक सच्चाई है जो सारे जड़ और चेतन, सभी का स्रोत है, और जो हर जीव का सच्चा स्वरूप है। अपने सच्चे स्वरूप को जान लेने के बाद उनकी अपने शरीर से पहचान सदा के लिए नष्ट हो गई।

"इस अद्वैत आत्म–ज्ञान के साथ–साथ हर चीज़ का रहस्य भी खुल गया और सारा सच स्पष्ट हो गया। अपने आपको अनंत आत्मा जानने के बाद और चेतना के मूल स्वरूप 'मैं हूँ' होने के बाद – जिससे और जिसमें से बाकी सब चीज़ों की जानकारी होती है – इसलिए ही उन्हें निश्चित रुप से पता था कि सबकुछ जो प्रकट होता है और खो जाता है – वो अपने जीवन के लिए मूल चेतना पर निर्भर करता है जो उनका अपना सच्चा स्वरूप है।"

राजीवः

गुरूजी, इसके लिए धन्यवाद, बहुत–बहुत धन्यवाद। यह तो सच में मुझे भय के दायरे से बाहर आने की प्रेरणा देगा।

एक सच्चे गुरू के बगैर इस यात्रा पर जाना नामुमकिन है, गुरूजी। मेरा अहोभाग्य है कि आप मेरे साथ–साथ चल रहे हैं और मैं बहुत खुश हूँ कि बहुत सारे लोग जागरूक हो रहे हैं। ऐसा लगता है कि आपका अद्वैतों के लिए साधना या ध्यान का संदेश सही जगह पहुँच रहा है।

आशा है कि आपकी यह शिक्षा हर जिज्ञासु साधक का एक अहम हिस्सा बन जाएगी।

एडजीः

यह तुम्हारा भविष्य हो सकता है। शायद अगले तीन सालों में तुम्हारा मुख्य कार्य एक शिक्षक बनना होगा। लेकिन इससे पहले अपने आपको जानने का मूल कार्य तुम्हें समाप्त करना होगा। अभी तुम 95 प्रतिशत आत्मिक विद्यार्थियों के शिक्षक बन सकते हो।

राजीवः

गुरूजी, अभी तो अपने आपको जानना ही मेरे लिए सर्वाधिक महत्व रखता है। यही मेरी ज्वलंत इच्छा है। आपने सही कहा है कि यह काम अभी भी अधूरा पड़ा है। मुझे बिल्कुल नहीं पता कि 3 साल बाद मैं कितना अच्छा शिक्षक बन सकूँगा।

मेरा दिल यह चाहता है कि ज़्यादातर लोगों को चेतना के प्रेम के बारे में पता चलना चाहिए जो सारी जरूरते व इच्छाएँ पूरी करती है। लेकिन बहुत सारे लोगों में वह जानने की वैसी प्यास ही नहीं है।

कुछ अपने आप से खुश हैं। कुछ लोग इसके मानसिक ज्ञान से खुश हैं और बहुत ही कम लोग उसको जानने के लिए कोशिश करते हैं। बाकी के लोग तो, झुण्ड जो कर रहा है वही करते हैं। वह सब एक गुरू के शिष्य बन जाते हैं जो सामुहिक शिक्षा देकर एक झूठी सुरक्षा का आभास दिला देते हैं। बहुतों को तो अपने सच्चे स्वरूप को जानने की ज़रूरत ही नहीं लगती।

एडजीः

अपने आपको जानने से ज़्यादा महत्वपूर्ण और कुछ नहीं है। अपनी ऊर्जा को सिखाने और लम्बे जवाब लिखने में नष्ट मत करो। यह तुम्हारे लिए सिर्फ एक अभ्यास है। मैं तुम्हें दोष नहीं दूँगा, अगर तुम अभी भी सबकुछ छोड़कर कहीं एकांत में चले जाओगे। वैसे तो कुछ भी हो सकता है – कोई पारिवारिक ज़रूरत या मुसीबत जिसमें तुम्हारा बहुत समय लग जाए और उस समय तुम अपना ध्यान बँटने से सबकुछ खो बैठो।

राजीवः

गुरूजी, सच ही तो है यह।

धन्यवाद,

(*टिप्पणी – यहाँ पर एक प्रश्न जो राजीव ने पूछा नहीं था, वह प्रश्न है – शिक्षा के बारे में और कैसे अलग–अलग शिष्यों को शिक्षा दी जा सकती है। बहुत सारे क्रिया और कुण्डलिनी के योगी राजीव को लिखकर अपनी साधना में राजीव की मदद माँगने लगे थे। यह अक्तूबर 2009 में हुआ जब एड के साथ हुए ये संवाद इंटरनेट पर छपे थे। राजीव ने इन सवालों के जवाब लिखकर पहले एड को पढ़ने के लिए भेजे। वैसे भी एड अब भी राजीव के गुरू ही थे और इसमें भी उनका मार्गदर्शन कर रहे थे। इसलिए वह टिप्पणी की गई है कि अपना समय इनके जवाब देने में नष्ट न करो। एड को डर था कि वे राजीव का ध्यान बँटा देंगे। ये चिट्ठियाँ बाद में अलग से छापी जाएंगी क्योंकि वे भविष्य के योगिओं के अनुभवों पर केन्द्रित हैं और इस विषय में बहुत ही कम किताबे लिखी गई हैं।*)

एडजीः

बहुत से जिज्ञासुओं को सिर्फ मनोरंजन चाहिए या फिर वे केवल उत्सुकता दिखाते हैं। रॉबर्ट की बहुत सी बातें ऐसे लोगों के लिए थी। उनकी बातें उन्हें धीरे–धीरे रास्ता दिखाती थीं और फिर कभी उनके संदेश का गहरा सच कुछ ही समय में किसी मान्य, रुचिहीन, दुनिया के व्यक्ति के रुप को भी परिवर्तित कर देगा। यह कोई नहीं जान सकता! चेतना हमें हमेशा ही अचंभित करती रहती है।

शरीर या चक्रों को साधना के केन्द्र बिन्दु ना बताओ। यह शरीर पूरी तरह से एक भ्रम है। चेतना तो प्रकटीकरण के स्तर तक ही है, इसलिए शरीर को साधना का केन्द्र बनाना इस मुद्दे को और भी मज़बूत करना है कि साधक एक शरीर है। यहाँ तक कि सूक्ष्म और कारण शरीर भी भ्रम हैं। ये सिर्फ धारणाएँ हैं जो अनुभवों की विभिन्न श्रेणिओं को दर्शाती हैं। मिसाल के तौर पर यह समझना ज़रूरी है कि विस्तृत मन का अनुभव – उस पहली शून्यता का, एक सूक्ष्म शरीर का आभास है, जबकि पूर्ण शून्यता, कुछ नहीं का होना, गहरी निद्रा का, पारंपारिक 'कारण शरीर' का आभास है। यह वही शून्यता का अनुभव है जिसकी जानकारी सबको विमुक्ति से होनी चाहिए। उन्हें सिर्फ 'होने पर', इस 'मैं हूँ' एहसास पर, अपना ध्यान केन्द्रित करने को कहो। यह कुछ लोगों के लिए पहले तो हृदय से जुड़ा हुआ लगेंगी लेकिन धीरे–धीरे इस बात का रहस्योद्घाटन होगा कि यह चेतना का एक काल्पनिक गठबन्धन है जैसा शरीर का भी है जिसका साक्ष्य अंतिम पड़ाव पर पहुँच कर ही होता है। यह भी एक धारणा है, इशारा है, इसलिए साक्षी बनने या चीज़ों का साक्ष्य करने में खो मत जाना।

शरीर को महत्व मत दो।

भविष्य में शिष्यों का अपने मन से ध्यान हटाने में उनकी मदद करो। यह कुण्डलिनी के अनुभवों को जागृत करती है और सोच में ऊर्जा ले आती है। हृदय की ओर बढ़ने से उनका ध्यान केन्द्र मन से दूर तो हो जाता है लेकिन उनकी शरीर से पहचान बढ़ जाती है। इससे नीचे ध्यान लगाने से विचारहीन स्थिति में साधक

जल्दी ही आ जाते हैं। लेकिन बहुत सारे साधकों को इस स्तर पर ध्यान केन्द्रित करने में मुश्किलें आती हैं। निश्चय ही उन्हें अपने मन से दूर रहने का निर्देश दो।

उन्हें यह भी याद दिलाओं कि शारीरिक अनुभव एक भ्रम है। जो कुछ भी है, चेतना है और शरीर से तादात्म्य उस भ्रम को बढ़ावा देता है, उन्हें दिलासा दिलाओं कि 'मैं हूँ' का एहसास शरीर से काफी भिन्न है लेकिन शुरुआत में बिल्कुल शरीर जैसा महसूस होता है।

देखो, समाधियों का मुख्य उद्देश्य अपने आपको शरीर न समझकर, चेतना को पूर्णता से समझना है – एकात्मकता का अपना अनुभव उसके साथ करना है। आखिरकार वह समय आएगा जब तुम्हें एहसास होगा कि तुम वो आकारहीन चेतना हो जिसमें हर वस्तु समा जाती है, हर वैविध्य समा जाता है। बहुत बार चेतना और एकात्मकता से खेलने के बाद, बार–बार होनेवाली पहचान के बावजूद तुम्हें पता चलता है कि साक्षी तो तुम से बहुत अलग है और तुम सूक्ष्म शरीर की समाधि से से भी गहरे हो।

इसलिए शरीर के किसी बिन्दु पर ध्यान केन्द्रित करने पर साधक सोचता है कि वह चेतना है जो शरीर के अंदर निरीक्षण कर रहा है जबकि वह वास्तव में तो चेतना से चेतना का ही निरीक्षण कर रहा होता है।

राजीवः

मुझे दोनों केन्द्रों पर एकात्मकता लगती है। अगर मैं अपनी आँखें बंद कर लूँ तो अक्सर मुझे हृदय केन्द्र होने का एहसास होता है और उसके साथ ही अपने ध्यान का अपने तीसरे नेत्र पर होने का भी एहसास होता है। कई बार सामने की शून्यता हर चीज़ को घेर लेती है। मैं खुद ही शून्यता बन जाता हूँ। मुझे कोई भी अंतर नहीं महसूस होता एक खाली आकाश के सिवाय जो सबकुछ घेर लेता है। वह हृदय के साथ मन में भी और आगे फैली हुई शून्यता पर भी होता। सबकुछ एक है। क्या यह सही है, गुरूजी?

एडजीः

हाँ, यह सब एक ही है, फिर भी तुम एक साक्षी के रूप में अलग हो। तुम एकात्मकता को देखने वाले हो। वहाँ एकात्मकता है, लेकिन फिर तुम्हें लगता है तुम हो, एकात्मकता हो रही है उसका अनुभव ले रहे हो।

राजीवः

गुरुजी, मेरा सच्चा स्वरुप अभी तक मुझसे छुपा हुआ है। अभी तक उस 'एक' का अनुभव नहीं हुआ है।

एडजीः

लेकिन तुम जागरूक हो, तुम्हें सिर्फ इस बात का पता नहीं है। तुम हमेशा जागरूक हो और इससे कोई फरक नहीं पड़ता कि तुम किस अनुभव या स्थिति से गुज़र रहे हो। वो तो मन है जो नहीं जानता, क्योंकि यह मन तो सिर्फ वस्तुओं को जानता है और वस्तुएँ तो अस्थाई रूप में और अवास्तविक होती हैं।

तुम अब भी एक वस्तु की तरह साक्षी का साक्ष्य करने की कोशिश कर रहे हो, जो कभी भी मुमकिन नहीं है। यह कोई साक्ष्य या अनुभव करने की वस्तु ही नहीं है। यह इस मायने में चेतना के दायरे से परे है क्योंकि जागृत अवस्था और निद्रा अवस्था तो तुम्हारे मन की उपज है, तुम्हारी प्राकृतिक मूल अवस्था की परिवर्तन मात्र है।

इससे तो अच्छा है, 'साक्षी' में समा जाओ और वह ही बन जाओ।

राजीवः

हाँ, अब तक तो मैं अपने 'होने' की स्थिति को आगे फैली हुई शून्यता पर, साधना करने दे रहा हूँ। बहुत बार मुझे इन दोनों के बीच एक जबरदस्त एकात्मकता लगती है। एक का दूसरी चेतना में बहना और फिर दोनों का एक हो जाना। लेकिन कई बार मुझे यह लगता है कि मैं सिर्फ आगे फैली हुई शून्यता का साक्षी ही हूँ।

इसके बाद मैं भिन्न–भिन्न स्वप्न चित्रों में खो जाता हूँ और एकदम से सजग जागरूक होने के बाद मैं जागृत अवस्था में आ जाता हूँ फिर स्वप्न चित्र और और फिर जागृत अवस्था।

जैसे ही मैं स्वप्न चित्रों के बारे में जागरूक होता हूँ, वैसे ही मैं जागृत अवस्था में आ जाता हूँ। सजग साक्षी की अवस्था से, शून्यता फिर से मुझे स्वप्न अवस्था में डाल देती है तो वास्तव में जागरूक अवस्था और स्वप्न अवस्था के बीच में ही घूम रहा हूँ।

इसके बीच–बीच में मुझे एक असीम शांति का एहसास होता है, जैसे कि बाहरी और अंदरूनी दुनिया रुक सी गई है। वह एक सूक्ष्म क्षण के लिए ही होता है। वह बाहरी शोर एक क्षण के लिए एकदम से रूक जाता है और फिर शुरु हो जाता है। पुनः सजग होने पर बाहरी शोर भी पुनः शुरु हो जाती है और ऐसे ही यही क्रिया लगातार होती रहती है।

मुझे यह एहसास है कि उस रात के भयानक अनुभव के बाद, मैंने ज़्यादा प्रगति नहीं की है।

हाँ, शायद अब मैं अपने होने के एहसास में फिर से समा जाने की कोशिश करूँगा और देखूँगा कि आगे क्या होता है।

एडजीः

आगे फैली हुई शून्यता से तुम्हारा क्या मतलब है? तुम्हारा अनुभव क्या है? क्या तुम्हें पता है कि तुम शून्यता से अलग होकर उसका साक्ष्य कर रहे हों? क्या तुम होने की अवस्था को अपने से अलग देख रहे हो?

उन दो अवस्थाओं के बीच में पेन्डुलम की तरह दौड़ना और उसके बीच–बीच में वह असीम शांति पाना, क्या यह ही वह सब है, जिसकी तुम खोज कर रहे हो?

राजीवः

आगे फैली हुई शून्यता से तुम्हारा क्या मतलब है? तुम्हारा अनुभव क्या है? गुरूजी, आगे फैली हुई शून्यता वह अंधकार का घेरा है जिसका हम सब साक्ष्य करते हैं, जब हम अपनी आँखें मूँदते है। यह शून्यता और भी ज़्यादा फैल सकती है या फिर घूम सकती है लेकिन यह मेरी मनःस्थिति पर निर्भर करता है।

कई बार यह धुएँ जैसी लगती है और कई बार चमकीली, तेज़ दिखती है। कई बार यह एक काली दीवार से दिखती है। बिल्कुल काली जहाँ कोई हलचल नहीं होती। कई बार लेटते वक्त मैं अपने आपको अन्दर की एक सुरंग में जाते सा दिखता हँ। कई बार वह शून्यता एक घड़ी की सुई की तरह घूमती है और कई बार यह मेरे हृदय में समा जाती है। मैंने अपने अंदर होने वाली इन कुछ चीज़ों को ध्यान से देखा है। हाँ, मैं शून्यता को अपने से अलग देखता हूँ।

क्या तुम होने की अवस्था को अपने से अलग देख रहे हो?

नहीं, मैं अनुभव करता हूँ कि होने की अवस्था तो 'मैं' ही हूँ।

जब बहुत बार द्वैत गिर जाता है – वह होने की अवस्था और आगे फैली हुई शून्यता दोनों एक ही हैं। ऐसा लगता है। लेकिन शुरुआत में तो मैं ही होने की अवस्था 'मैं' ही हूँ और आगे फैली हुई शून्यता को देखता हूँ।

वह दो अवस्थाओं के बीच में पेन्डुलम की तरह डोलना और उसके बीच–बीच में वह असीम शांति। क्या यही वह सब है जिसकी तुम देखना चाह रहे हो।

आह! सच ही! यह थोड़ी देर की पूर्ण शांति ऐसी लगती है जैसे सबकुछ रूक गया हो। वह बाहरी और अंदरूनी शोर भी। लेकिन यह सब क्षणिक ही होता है क्योंकि मन हमेशा बीच में हस्तक्षेप करता है और मैं फिर जाग जाता हूँ।

कई बार जब मैं काम पर होता हूँ, ज़्यादातर दोपहर में जब मैं अकेला होता हूँ मुझमें एकदम से एक विचार आता है कि सबकुछ कभी भी रूक सकता है। लेकिन यह ध्यान जैसा नहीं है। ध्यान में बाहरी आवाजें कम और दूर लगती हैं, अंदरूनी आवाजें भी रूक जाती है लेकिन बस क्षणभर के लिए ही।

क्या यह मेरी समझ की उन्नति है, गुरूजी? क्या यह ठीक है?

एडजीः

वह शून्यता जिसका तुम अनुभव कर रहे हो, एक निद्रा समान है और ज़ेन एवं अन्य लोग जिसे शून्यता कहते हैं उससे अलग है। ऐसी बहुत सारी शून्यताएँ है। जो शून्यता तुमने अनुभव की है उसमें अनुभव के लायक बहुत कुछ है। ज़ेन की शून्यता में एक खालीपन है, अंतरिक्ष जैसा और उसमें सबकुछ समा जाता है। यह बिल्कुल स्पष्ट और आत्मप्रकाशित है। यह चेतना की पूर्ण और परम शुद्धता है। यह वही शून्यता है जिसकी अनुभूति आत्म–दर्शन की अवस्था के निकट होने पर ही होती है।

वह जिसका कि अनुभव तुमने किया है उसका संबंध सूक्ष्म शरीर और निद्रा से है। तुम सूक्ष्म और कारण समाधि और निद्रा के बीच ड़ोल रहे हो।

इसके बीच का स्थान तुरिया का है। मेरा अंदाजा है कि तुम इस ओर जाकर स्थिर हो जाओगे। उस समय तुम देखोंगे कि चेतना और स्वप्न अवस्था तुम नहीं हो। वे तो अनुभव हैं जो तुमसे जुड़ गए हैं। यही सच्ची जागृति है।

धीरे–धीरे यह सूक्ष्म शून्यता भी गायब हो जाएगी और जो शून्यता बच जाएगी वह विशाल होगी। उसी तरह जिस तरह आकाश हर चीज़ को बेध देता है। इस संसार को, तुम को, तुम्हारे शरीर को। यह आत्मप्रकाशित है – जो हर चीज़ को प्रकाशित करती है। यही वह स्पष्ट शुद्ध आत्मप्रकाशित शून्यता है। बहुत सारे लोग इसे ही अंत समझते हैं लेकिन वह अंत नहीं है।

तुम्हारे अनुभवों का क्रम, मेरे अनुभवों से अलग है, पर इतनी समानता तो उनमें है ही कि मैं उसके बारे में कुछ कह सकता हूँ। टिप्पणी दे सकता हूँ।

राजीवः

उस स्थान का मतलब है निद्रा और एकात्मकता के बीच की 'शांति'। वह असीम शांति जहाँ मानो सबकुछ रूक सा जाता है – क्या यही तुरिया है। हाँ, मुझे इससे यह सीख तो मिलती है कि स्वप्न नही हैं और चेतना भी नहीं है क्योंकि मेरे बाहर और अंदर के सारे शोर कम हो गए हैं। यह एकदम भाव–विचारहीन स्थिति है और फिर एक क्षण ही में जाग जाता हूँ। शोर कम होने से मुझे ऐसा लगता है कि सबकुछ रूक गया है, क्योंकि अगर चेतना पूरी तरह गुम हो जाती है तो मुझे कभी भी अनुभव नहीं होगा। अनुभव तो सिर्फ आवाजों, शोर और भावनाओं के कम होने का है। कम से कम बाद में सोचने पर मुझे ऐसा ही लगता है।

एडजीः

तुम्हारे वर्णन से ऐसा ही लगता है।

तुम्हें अनुभवों की प्यास के दायरे से दूर हटना होगा। अनुभव तो सिर्फ इस चमत्कारी संसार और शून्यता का है। तुम जो हो वह तो इससे भी आगे हो। हालांकि जब तक मन और शरीर रहेंगे – अनुभव भी जरूर होंगे।

तुम वह हो जो अनुभवों का साक्ष्य करते हो – यानि तुम स्वयं अनुभव नहीं हो। तुम अपनी भिन्न समाधियों में अनुभव से एकता रखते हो, जो कुछ समय के लिए तुम्हें यह विश्वास दिलाता है कि वह तुम ही हो।

विभिन्न शून्यताओं पर तुम बहुत ज़्यादा समय बिता रहे हों। यह सब वस्तुएँ हैं, यह तुम नहीं हो।

यहाँ इस समय, कुछ दिन बीत गए, बिना किसी वार्तालाप के।

राजीवः

गुरूजी, पिछले कुछ तीन–चार सत्रों से साधना में मुझे कुछ सूखापन महसूस हो रहा है। इसका बहाव पहले जैसा नहीं है और यह अस्वाभाविक लग रही है। किसी भी एकात्मकता हर्ष या परमानंद का कोई अनुभव नहीं हुआ है। मैं सिर्फ आगे फैली हुई शून्यता का साक्षी बन जाता था। पर, फिर भी 'होने' की अवस्था गायब थी और कुछ भी महसूस नहीं हो रहा था। वहाँ मैं और शून्यता ही थे, कोई भावना नहीं, एकात्मकता भी नहीं, पूर्ण सूखापन था।

जागरूक अवस्था भी पिछले दो दिनों में काफी स्वाभाविक लग रही है।

चेतना शायद कुछ अलग ही रंग दिखा रही है। मैं इससे परेशान नहीं हूँ क्योंकि आपने मुझे इनके बारे में पहले से ही बता दिया था। जितना हो सके मैं उतना हर चीज़ का साक्ष्य करुँगा और जागरूक रहूँगा।

एडजीः

'मैं हूँ' में डूबकी लगाओ। वहाँ तुम हो और शून्यता है। 'मैं हूँ' एहसास पर ध्यान केन्द्रित करो। होना गायब हो गया है लेकिन मैं अभी भी है – इस 'मैं' में डूब जाओ।

राजीवः

वहाँ तो सिर्फ मैं ही था और वह शून्यता अलग थी। मैं उसका साक्षी बन गया था लेकिन हर चीज़ ठंडी और रुखी–सूखी थी। कोई मज़ा न था।

वास्तव में तब कोई चित्र भी नहीं थे। सिर्फ कुछ विचार इधर–उधर थे। किसी तरह का कोई भी अनुभव और भावनाएँ नहीं थी।

संक्षेप में, मैं मानता हूँ कि बहुत ही थकाने वाला सत्र था।

यह सब क्या हो रहा है?

'मैं' में डूबने का मतलब शून्यता से दूर जाना होगा, पीछे की ओर। क्या यह ऐसा नहीं है, गुरूजी?

एडजीः

हाँ, आखिरकार यह पीछे की ओर जाना ही है। यह सब अनुभव आदि वास्तविक नहीं हैं। तुम्हारे लिए 'मैं हूँ' में डूबने का मतलब है किसी हस्ती में, पृष्ठभूमि में पीछे के ओर गिर जाना। आखिर तुम्हें किसी जगह पहुँचना है जो 'मैं हूँ' से पहले था, चेतना से पहले।

मैंने शून्यता में 'मैं' को देखने में बहुत साल गवाँ दिए। यह मेरी बहुत बड़ी भूल थी, लेकिन यह ज़ेन में काफी सिखाया जाता है, शून्यता और खालीपन पर वे बहुत ज़ोर डालते हैं। साधना में भी यही प्रचलित है। भिन्न–भिन्न शून्यताएँ तो बस चेतना` अलग–अलग रूप हैं। आखिर में तुम चेतना के सामने एक स्थान लेना चाहते हो।

यह उदासीनता सामान्य है – एकदम सामान्य। बहुत लोग कुछ महीनों के बाद हार मान लेते हैं और साधना छोड़ देते हैं। तुम अब सूक्ष्म शरीर पीछे छोड़ रहे हो। वहाँ तक पहुँचने के बाद वह अधिकाधिक उपलब्ध रहेगा। अभी, तुम्हें और भी कुछ ज़रूरी अनुभवों से गुज़रना होगा। तुम्हें चेतना की उपस्थिति और अनुपस्थिति के बारे में और जानकारी प्राप्त करनी होगी। तुम्हें महसूस होगा कि तुम बदल नहीं रहे हो। समाधियों के लगने, ना लगने से इसका संबंध नहीं है। क्योंकि तुम अपरिवर्तनशील हो। सिर्फ तुम्हारे विचार, भावनाएँ और अनुभव बदलते रहे हैं और ये सब तुम नहीं हो।

राजीवः

बहुत खूब। हमारे लिए जो भी आप कह रहें हैं गीता और बाईबिल से कम नहीं है।

हाँ, भावनाओं के बारे में कुछ सवाल ज़रूर हैं।

मुझे परमानंद या मदहोशी का अनुभव क्यों नहीं हो रहा है? क्या मुझे और साधना करनी चाहिए? जिस तरह पहले की साधना स्वाभाविक थी, अब वैसी नहीं है, क्या मैं साधना में कोई गलती कर रहा हूँ? क्या मैं अपने आपको पहले वाली स्थिति में ला सकता हूँ? ये कुछ प्रश्न हैं, जो उठ–उठ आते हैं। क्या मैं गुरू–प्रसाद योग्य नहीं रहा हूँ?

अब, मुझे पता है, सब कुछ ठीक है, इसलिए मैं अब भी साधना करता हूँ, पर बिना किसी अनुभव की अपेक्षा करते हुए। मन तो हमेशा हर अनुभव की प्रगति का विश्लेषण करने में ही लगा रहता है। इसे किसी तरह सुलझाना ही होगा।

मैं पृष्ठभूमि में जाकर 'मैं हूँ' अवस्था में शरण लूँगा।

मैं आपको बताता रहूँगा।

आपका अत्यन्त ऋणी मैं, गुरूजी।

एडजीः

शून्यता का कोई पुख्ता प्रमाण नहीं हो सकता। तुम वहाँ बिना ज्ञान के हो और तब चेतना प्रकट होती है। और थोड़ी देर बाद वह गायब हो जाती है। तुम जानते हो कि तुम हो क्योंकि तुमने चेतना को आते और जाते देखा है, तुम ज्ञान की वह इकाई हो जो उस नरक के अनुभव से पहले से ही वहाँ पर थी।

राजीवः

गुरूजी, आज शाम की साधना में मैंने एक नई सीख़ पाई। मैंने पृष्ठभूमि में डूबने का अनुभव किया।

जैसे ही मैं ऑफिस से घर पहुँचा, मुझे साधना करने की तीव्र इच्छा हुई। मेरे दिल में एक लहर सी उठी और सिर भारी हो गया।

जैसे ही मैं साधना में बैठा, मेरी आँखें सामने की शून्यता पर ठहर गई। वहाँ सिर्फ मैं था जो शून्यता का साक्षी था और बाहर बहुत शोर हो रहा था।

मुझे अचानक ही पृष्ठभूमि में एक खिंचाव सा महसूस हुआ और मैं उसके साथ पीछे खिंचता रहा और जैसा कि आपने कहा था – सामने की शून्यता को नज़र अंदाज करता गया। फिर उस खिंचाव ने ज़ोर से पकड़ लिया और उस शोर का स्वरूप बदल गया। समय–समय पर शोर कभी ज़्यादा और कभी कम हो जाता था। मैं लेट गया और खिंचाव की गति तब और बढ़ गई।

मेरे तीसरे नेत्र पर जोर से हथौड़ा सा पड़ने लगा और मेरे सामने की हर चीज़ मेरे उदर के अन्दर खिंचती गई। वह सब कुछ जिसे मैंने चेतना समझा था, वह शून्यता, मेरा शरीर, मैं, वह सबकुछ मेरी नाभी के क्षेत्र में तीव्र गति से डूब रहा था। मानो, सबकुछ डूब–सा रहा है। मैं डर गया। यह सब साधना में बैठने के कुछ मिनटों में ही हो गया।

यह डूबने का अनुभव तो फिर भी एक अनुभव ही है, लेकिन शायद वह किसी अनजान क्षेत्र में हो रहा था। मैं शायद उससे ही डर गया। अब सोचने पर मुझे उस डरने पर पछतावा हो रहा है।

एडजीः

हाँ, यह एक अच्छा संकेत है। तुम्हारा अहम्, मरना नहीं चाहता। अगर तुम कर सकते हो तो सबकुछ छोड़ दो जो हो रहा है, होने दो और उसमें डूब ही जाओ।

धीरे–धीरे यह डूबना एकदम ही, पूरा हो जाएगा और एक भिन्न वास्तविकता दिखने लगेगी।

डरो मत, तुम उसके बाद वापिस वैसे ही हो जाओगे, लेकिन तुम्हें अभी पूर्ण आत्मसमर्पण करना होगा।

राजीवः

'मैं हूँ' या 'मेरा होना' एकात्मकता का अनुभव जो मुझे ध्यान के दौरान होता था, अब नहीं होता। अब केवल शून्यता व साक्षी रह गये हैं। वह परमानंद और हर्ष जो मध्य का सेतु था, मेरे 'होने' और शून्यता में, अब गुम हो गया। वह स्वाभाविक धारा अब नहीं है। साधना अब सिर्फ शून्यता और विचारों पर ध्यान देने तक ही सीमित हो गई है।

वह एकात्मकता ही मेरे विचारों को दूर रखती थी, बहाव को रोकती थी। मैं हूँ पन का अनुभव जो मैं ध्यान के दौरान और वैसे भी अक्सर करता था बिना प्रयत्न के ही, पर अब बिना 'मैं हूँ' के मैं अचानक एकदम से विचारों के बहाव को अनुभव करता हूँ।

कल शाम के पहले पहर में ही वह 'मैं हूँ' का अनुभव फिर से वापस लौट आया – अपने असीम जोश और परमानंद के साथ। मैं बहुत खुश हुआ और मैंने देखा कि कैसे पृष्ठभूमि के विचार भी इसे परेशान नहीं कर रहे। विचार तो कछुए की चाल में आ रहे थे और शुरूआत में ही मैंने उनको पकड़ लिया था।

आज सुबह वह 'मैं हूँ' का भाव फिर से नहीं था और मैं जानता था कि आगे और भी मुश्किलें होगी। आज सुबह तो कोई भी भावना नहीं है, ना परमानंद है, ना हृदय में होने की भावना, ना हर्ष, बिल्कुल कुछ भी नहीं है।

मुझे माफ कर दीजिए, मैं आपको फिर से परेशान कर रहा हूँ और हम इस पर पहले विचार कर चुके हैं, लेकिन मुझे लगता है कि ध्यान में कोई लींक या कड़ी टूट गई है। गुरूजी, मैं उस एकात्मकता के लिए तरस रहा हूँ।

कई बार आपको कुछ चीज़े फिर से लिखना, मुझे मदद पहुँचाता है। मुझे लगता है कि एकात्मकता से इस कदर जुड़ना मेरे लिए ठीक नही हैं।

वो एकात्मकता के दो महीने बहुत ही सुन्दर थे और मेरे जीवन का एक हिस्सा बन गए थे। मुझे विश्वास नहीं हो रहा था कि ये मुझे इतने जल्दी छोड़ जाएंगे। अब यह अनुभूति कभी भी आती हैं और किसी भी समय चली जाती है ख़ासतौर से ध्यान के समय।

एडजीः

'मैं' पर ही रहो। 'मैं' में जाओ। 'मैं' में खो जाओ। वहीं लक्ष्य है। तुम यह भी कह सकते हो कि वह 'मैं हूँ' चेतना तुम्हें अपने बंधन से आज़ाद कर रही है और अब तुम अपना वह सच्चा स्वरूप ढूँढ़ सकते हो जो उससे दबा हुआ था।

1995 में मैंने एकात्मकता के आल्हाद से मुँह मोड़ लिया था क्योंकि मुझे पता चल गया था कि वह मुझे अपने स्रोत – पूर्ण सच को खोजने में बाधा डाल रही थी और मेरा ध्यान बँटा रही थी।

और भी वहाँ केवल दो ही चीज़ें नहीं हैं। जागृत अवस्था है और तुम हो। निद्रा अवस्था है और तुम हो। शून्यता है और तुम हो। स्वप्न अवस्था है और तुम हो। इन सब में समान तत्व क्या है? तुमने उस 'मैं' का शोध नहीं किया है। तुम निरंतर बदलती चेतना के बहकावे में आ गए हो। तुम अब भी उन सारी वस्तुओं के प्रति सजग हो।

तो, तुम आखिरकार हो कौन?

राजीवः

हाँ, वह 'मैं' ही एक समान तत्व है। मुझे सिर्फ 'मैं' पर ध्यान केन्द्रित करना होगा और परमानंद और एकात्मकता के खेल से बचना होगा। मैं अपनी जागृत अवस्था और ध्यानावस्था में सिर्फ अपने सच्चे स्वरूप 'मैं' की खोज में अपना ध्यान केन्द्रित करुँगा, उसका साक्षी बनकर।

मेरा सच्चा स्वरूप 'मैं' तो एक अपरिवर्तनिय तत्व है, एक स्थाई स्वरूप, जबकि बाकी सब चीज़ें जैसे – निद्रा, स्वप्न, शून्यता, 'मेरा होना' यह सब 'मैं' में जोड़ी गई है, यह मैं अब समझ गया हूँ, गुरूजी।

एडजीः (कुछ दिनों बाद)

'मैं' के पथ पर चलने से क्या हो रहा है? तुमने स्थूल और सूक्ष्म शरीर के चमत्कार को भेद लिया और अब तुम्हें कारण शरीर को जानना है। तुम वह बहुत खुबसूरती और परिपूर्णता से तब कर सकते हो, जब तुम 'मैं' में डूब जाओगे।

राजीवः

गुरूजी, मैं अब भी 'मैं' में डूबे होने के एहसास को समझने की कोशिश कर रहा हूँ।

कई बार मुझे लगता है कि मैं शरीर मात्र हूँ, जो 'मेरे होने' के पीछे हृदय की तरफ है। और कई बार मुझे लगता है कि मुझे अपने शरीर के पीछे की ओर खाली स्थान में जाना चाहिए। कई बार ऐसा भी लगता है कि 'मैं' से शून्यता का साक्ष्य कर रहा हूँ। और कई बार ऐसा लगता है कि शून्यता का साक्ष्य 'मैं' में जाते हुए करता हूँ। इतनी सारी क्रियाएँ एक साथ हो रही हैं।

लेकिन अब मुझे अलगाव ज़रूर महसूस होता है। यह एहसास पीछे की ओर ज़्यादा स्थिर है। यहाँ ज़्यादा भाव – या भावनाएँ नहीं है सिर्फ एक स्थिरता है जो पृष्ठभूमि में महसूस होती है। कई बार इसके बीच मुझे कुछ क्षणों के लिए ऐसा महसूस होता है सबकुछ शांत हो गया है।

कल शाम का ध्यान :

मैं लेटा हुआ था। मैंने यह तय किया था कि मैं सिर्फ लेटा रहूँगा और देखूँगा। 20 मिनट तक देखने के बाद मुझे मंदिर के तेज़ घण्टे सुनाई देने लगे जो 25 मिनट तक बजते रहे। मैं अन्दर की ओर गया और एकदम से मुझे डर सा लगा और अपने दिशा भ्रमित होने का सा एहसास हुआ। जब मैंने आँखें खोली तो पता चला कि मंदिर की घण्टियाँ बंद हो गई थीं, जिसका मतलब था कि मैं 20 मिनट के लिए सो गया था। एक स्वप्नहीन नींद।

वह डर और वह अस्थिरता स्वप्नहीन नींद से वापस आने पर थी, क्योंकि उसके बाद मैं चेतना में था। इसलिए मैंने स्वप्नहीन नींद में जाने की क्रिया को जानने से चूक गया था और जागरूक तब हुआ, जब मेरी चेतना लौट आई। यह एक अंदाज़–सा हो सकता है, मैं दावे के साथ नहीं कह सकता।

उसके बाद मुझे सिर्फ एक बर्फीले सन्नाटे और स्थिरता का आभास हुआ, बर्फीला इसलिए क्योंकि वह आमंत्रित नहीं कर रहा था और फिर वहाँ डर और दिशा भ्रमित होने का एहसास भी था।

एडजीः

तुम्हें ज़रूर इस बात की जागरूकता है कि 20 मिनट तक तुम्हारा अस्तित्व ही नहीं था, तुम थे ही नहीं, दृश्य या साक्ष्य की तरह।

यह बात तो स्पष्ट है कि यह नींद के समय भी जारी है। अपने होने के एहसास की याद्दाश्त है उस समय बिना किसी जागरूकता के अनुभव के।

यह एक सही पथ है।

वह 'मैं हूँ' – बहुत जटिल है। पुराने योगी इसको समझते थे और वे चार शरीरों के बारे में बात करते थे। नए अद्वैतों को इस बारे में कुछ भी नहीं पता है। उन्हें सिर्फ 'मैं' विचार पर प्रश्न उठते हैं और जागृत, चेतना पर ही ध्यान देना है। वह गहराई में नहीं जाना चाहते।

निसर्गदत्त जी के धर्म भाई, रणजीत महाराज ने एक पुस्तक Amrutlaya प्रकाशित की थी, जो अब तक Live.com पर मिलती है। Amrutlaya महाराज और रणजीत के गुरूजी श्री सिद्धरामेश्वर महाराज ने लिखी है। यह पुस्तक इन शरीरों और उनकी प्रगति के बारे में पूरी खोज को दर्शाती है, लेकिन शिष्यों के अनुभवों और तरीकों के बारे में कोई जानकारी नहीं देती। मैं यहाँ पर यह जरूर कहना चाहूँगा कि मेरी अच्छी दोस्त मैरी स्केन जो मेरे गुरू रॉबर्ट की परम शिष्या थी, बहुत बार भारत गई थीं और उन्होंने रणजीत के साथ ही शिक्षा भी ली थी।

अब तुम कारण शरीर की अवस्थाओं को जान रहे हो। तुम अब माया के निचले स्तर को भेद रहे हो। ऐसा लगता है कि वहाँ बहुत सारे 'मैं' और शून्यताएँ हैं और तुम्हें इनकी जानकारी लेनी चाहिए। सबसे उत्तम तरीका है कि तुम शून्यताओं की छानबीन न करके 'मैं' में पीछे की ओर जाने की कोशिश करो।

कई बार यह शरीर से जुड़ा हुआ लगेगा, कई बार यह एक अदृश्य द्रष्टा की तरह लगेगा, वैसे ही जैसे तुम दो शून्यताएँ देखते थे।

तुम प्रगति कर रहे लेकिन यह स्तर (चाहे वास्तविक न हो, एक प्रगटीकरण हो) सूक्ष्म शरीर से ज़्यादा जटिल और मुश्किल है जिसको तुम पीछे छोड़े जा रहे हो।

इसका यह मतलब है कि तुम्हारी मुक्ति पूरे चलने के बाद ही होगी ना कि एक दो बार गहराईओं में गोते खा लेने के बाद ही, तब तो एक साल बाद तुम भूल ही जाओगे। तुम एक मागदर्शक बनोगे।

राजीवः

हाँ, गुरूजी। इसके पार जाना तो मुश्किल लगता है। केवल इच्छाशक्ति के बल पर यह असंभव है। मैं अब पूरे आत्मविश्वास के साथ कह सकता हूँ कि अपनी इच्छाशक्ति के बल पर चेतना से एकात्मकता पा सकता हूँ।

थोड़े से परिश्रम और मैं अपनी विचारहीन अवस्था में पहुँच सकता हूँ और फिर एकात्मकता आ जाती है। मैं इसका जरूरत से ज़्यादा इस्तेमाल नहीं करता, इसलिए मैंने सिर्फ कुछ ही बार ऐसा किया है और मुझे अपनी 'मैं हूँ' अवस्था वापस मिल जाती है।

लेकिन कारण शरीर का यह अनुभव करना बहुत ही मुश्किल है – हमेशा इच्छाशक्ति काम नहीं कर सकती। जब भी ऐसा हुआ है, वो अपने आप ही हुआ है। तो गुरूजी, क्या यह अच्छा नहीं होगा कि मैं उसे अपने राज अपने आप धीरे–धीरे खोलने दूँ?

एडजीः

तुम सिर्फ देखते ही न रहो, कुछ ज़्यादा क्रियाशील बनों। तुम्हें उसके साथ खेलना होगा। कभी सिर्फ देखो। तुम फिर से उसके साक्षी बनो। कभी एकात्मकता में घुल जाआ। तुम खोज करो, ढूँढों। यही आत्म विचार का सही मतलब है। तुम इस विषय के वैज्ञानिक हो।

'एकात्मकता' के साथ तुम्हें जो कुछ करना है, वह करो। तुमने उस स्तर पर काफी खोज कर ली है, फिर भी वह अब तक भी तुम्हारा मनोरंजन कर रही है।

राजीवः

मेरे अज्ञान के लिए मुझे माफ करें, जो गहरी निद्रा अवस्था और कारण शरीर के संबंध को लेकर हैं। मेरे सवाल हैं जो मूर्खता से भरे हो सकते हैं, पर कृपया मुझे बरदाश्त करें।

गुरूजी, ऐसा तो जरूर लगता है कि मैं उन 20 मिनटों में जागरूक नहीं था और जब चेतना आई तो मैं भयभीत और अस्थिर था। जब मैं जागा तो एक याद्दाश्त थी कि शायद मुझे स्वप्नहीन नींद आई थी, जिसमें कोई अनुभव नहीं था।

लेकिन गुरूजी, हर रात हम सब स्वप्नहीन नींद का अनुभव करते हैं। हम सबको यह याद रहता है कि हम कब सो गए और कब जागे। अर्थात हम सब इस सूक्ष्म शरीर, कारण शरीर के क्षेत्र में हर रात भाग लेते हैं ना?

मेरे पिता पलक झपकते ही जो जाते हैं और उसी तीव्रता से जाग भी जाते हैं। यह मुझे बहुत ही आश्चर्यजनक लगता है। फिर सही मायने में हम दोनों में अन्तर क्या है? मुझे पता है कि एक आत्मानुभूति और समझ की ओर ले जा रही है और दूसरी अज्ञानता की ओर पर फिर भी दोनों में ही कारण शरीरों का कोई भी सीधा अनुभव नहीं है।

क्या यह नियंत्रण के बारे में है? मेरे पिता अपने सोने पर कभी भी नियंत्रण नहीं रख सकते। मेरा मतलब है कि एक ज्ञानी साधक अपने सूक्ष्म शरीर पर नियंत्रण रख सकता है। (इच्छा से स्वप्न अवस्था लाकर) या फिर एक विचारहीन–अवस्था में आ सकता है, लेकिन एक सामान्य व्यक्ति तो हमेशा विचारों के तेज बहाव में रहता है। मेरा भी नियंत्रण विचारहीनता पर है और सूक्ष्य शरीर पर ज़्यादा है लेकिन यह कारण शरीर पर उतना नही है।

क्या फिर हम यह कह सकते हैं कि समय के साथ वह ही ज्ञानी साधक कारण शरीर पर भी उतना ही नियंत्रण रख सकेगा? और क्या यह ही एक ज्ञानी को दूसरों से अलग करता है।

कृपया मेरा मार्गदर्शन करें।

एडजीः

नियंत्रण की बात नहीं है। निद्रा अवस्था और कारण शरीर दोनों अज्ञानता के क्षेत्र हैं।

अन्तर यह है कि इच्छा अनुसार तुम कारण शरीर में जा सकते हो और फिर भी सजगता से शून्यता व चेतना के आने–जाने के प्रति जागृत रह सकते हो, जब कि एक आम व्यक्ति इन परिवर्तित स्थितियों पर ध्यान ही नहीं देता, सजग रहना तो दूर की बात है। तुम्हें यह जानकारी है कि तुम अब तुम ज्ञान से अज्ञानता की ओर जा रहे हो और कब तुम यहाँ से दूसरी अवस्था में पहुँचते हो।

कारण शरीर को छोड़ कर भी तुम्हें इसकी जागरुकता रहती है कि पृष्ठभूमि में तुम हो जो चेतना के आने–जाने का ज्ञान रखता है। शरीर, दिमाग और इस संसार के बनने से पहले से ही "तुम" हो। यह जागृत निद्रा की अवस्था है।

तुम्हारे लिए यह जानना महत्वपूर्ण है कि तुम्हारा अस्तित्व तब भी रहता है, जब कोई भी अनुभव नहीं होता। यह अमर होने की ओर दूसरा पड़ाव है। तुम में एक विश्वास पैदा हो जाता है कि तुम्हारा अस्तित्व चेतना के अनुभवों के बिना भी जारी रहेगा। यह तुम्हें धीरे–धीरे चेतना के शोर और हलचल से हटाकर, पृष्ठभूमि के ही प्रति जागरुकता बनाता है।

कोई भी आम इंसान गहरी नींद को अमर होने का सबूत नहीं मानता क्योंकि दोनों अवस्थाओं में घूमना आम इंसान के साथ ज़्यादा नहीं होता। जबकि एक साधक कई बार कारण अवस्था में आता–जाता है और यह बदलाव दूसरों के लिए भाँपना मुश्किल है, क्योंकि शारीरिक निद्रा की अवस्था, कारण अवस्था के अनुभवों की अपेक्षा बहुत ज़्यादा घनी और जटिल है।

जितनी चेतना तुम्हारे पास है – खोजने को – उतनी ही चेतना दुसरों को भी मिली है। सबके पास सारी चीज़ें मौजूद हैं जो तुम अनुभव करते हो, जैसे 'मैं हूँ' और परमानंद। लेकिन वे इन चीज़ों का अनुभव नहीं करते या उन्हें पता भी नहीं कि इन अनुभवों का मतलब क्या है, क्योंकि वे धारणाओं से बंधे हैं जहाँ पर संसार, शरीर और दिमाग ही असलियत है। जब इन चीज़ों पर ध्यान केंद्रित होता है तो गहन अवस्थाओं का अनुभव, एकात्मकता और परमानंद मौजूद ही नहीं हो सकते।

एक व्यक्ति जितना ज़्यादा समय 'मैं हूँ' अवस्था के गहरे स्तरों में बिताता है, उतनी ही ज़्यादा परमानंद और हर्ष की अवस्था उसे उपलब्ध हो जाती है। वह स्थिति उसे और भी गहराई में घसीट लेती है। यह वास्तव में प्रकृति की अनुकम्पा है। और इसके साथ तुम्हारे कारण शरीर के अनुभव में भी बदलाव आएगा। शून्यता भी अब बदलाव से गुजरेगी। अंधेरे से अब यह पूरी तरह आत्म–प्रकाशित हो जाएगी। यही वास्तव में तीसरी आँख का खुलना है, क्योंकि शून्यता अब हर जगह है – अंदर भी और बाहर भी, जिसमें पूरा ब्रम्हांड समाया है, लेकिन वह कहीं भी केंद्रित नहीं दिखती है।

राजीवः

मैं बहुत ही भाग्यवान हूँ कि मुझे आप जैसा गुरू मिला। आपकी शिक्षा आज के बहुत से अद्वैती तो सीखेंगे ही, लेकिन मुझे यह साफ दिख रहा है कि भक्त, योगी और अद्वैती आने वाले समय में आपकी सीख से लाभ उठाएँगे।

एडजीः

नहीं, यह आज के नए अद्वैतों को नहीं भायेगा। आज अद्वैतों की धारणा इतनी सहज कर दी गई है कि अब यह हर एक को अच्छी और आसान लगती है, क्योंकि यह बहुत कम करने पर भी बहुत ज़्यादा उपलब्धियाँ पाने का दावा करती है। यह एक बीमारी जैसी है जिसने जगत पर धावा बोल दिया है, जो एक साधक की असली प्रगति को रोक देता है।

नव अद्वैत हर जगह फैला हुआ है, लेकिन यह तुम्हें कुछ भी नहीं करने का आदेश देता है। सिर्फ गुरू का सत्संग सुनों, इस गुरू की किताब पढ़ो और इस नतीजे पर आओ कि 'मैं' है ही नहीं। यह सब करने पर फल एकात्मकता तो हो सकता है, लेकिन यह तो सिर्फ विशालकाय हिमखण्ड की मात्र चोटी ही है। बहुत बार यह सिर्फ असलियत से ध्यान हटा देता है। प्रज्ञा बुद्धि से ही प्रज्ञा बुद्धि को मिटाने में यह कभी भी कामयाब नहीं हो सकती।

मेरे अपने गुरू रॉबर्ट हमेशा गहराई में जाने की बात किया करते थे। अगर वह जिन्दा होते तो कहते कि, गहन अनुभव नए अद्वैतों के दृष्टिकोण से बिल्कुल परे है। उस समय भी अद्वैत के बारे में यही सोच प्रचलित थी कि चेतना ही सबकुछ है और उन्होंने मुझसे कहा था कि अगर उन्होंने सबको यह सीख देनी शुरु कर दी कि चेतना ही नहीं है और उसका कोई भी अस्तित्व नहीं है तो उनकी इस सीख पर बहुत विरोध होगा। जिन्होंने दीक्षा नहीं ली है उनको तो यह तो शून्यता का जीवन बहुत ही नीरस लगेगा। ऐसा लगेगा कि इससे किसी भी कीमत पर बचना जरूरी है। जबकि वह तो एक पूर्ण विश्राम और शांति की जगह है।

राजीवः

आजकल मैं पहले से बहुत ज़्यादा प्रयत्न कर रहा हूँ। अब तो दो घण्टे बैठकर इस सारी कार्रवाई का साक्षी बनकर देखना स्वाभाविक हो गया है। कुछ साधना सत्र बहुत ही कठिन श्रम से भरपूर होते हैं जबकि मन कभी भी कुछ भी घटने की अपेक्षा करता रहता है। मैं मन की सारी गतिविधियों पर ध्यान रख रहा हूँ। सारी अपेक्षाएँ और विचार जो मन लाता है, वह गहन ललक और एकात्मकता या वह समय जब कोई भी भावना नहीं होती – इन सबको साक्षी भाव से देख रहा हूँ।

कई सत्र अपने आप ही हो जाते हैं। कुछ क्षणों में ही विचार गायब हो जाते हैं और मैं स्वप्न अवस्था में प्रवेश कर जाता हूँ। और कई बार इन स्वप्न और जागृत अवस्थाओं के बीच घूमने के बाद, मैं महसूस करता हूँ कि नाभि के नीचे डूब रहा हूँ। वह फिर अपने आप रूक जाता है। शायद मन बीच में आ जाता है क्योंकि शायद वह आने वाली कारण अवस्था का इंतजार कर रहा हो। लेकिन अब नाभी पर डूबने का एहसास पहले से बहुत अधिक बार हो रहा है, जबकि मैं पीछे जाकर अपने आगे फैली हुई शून्यता को गहनता से देखता हूँ।

लेकिन कई सत्रों में बिल्कुल कुछ नहीं होता। मैं दो घण्टे से ज़्यादा भी बैठूँ तब भी कुछ नहीं होता, स्वप्न अवस्था तक भी नहीं आती। मैं फिर भी बैठा रहता हूँ और तब तक बैठा रहता हूँ जब तक कि मुझे ऑफिस जाने की ज़रूरत का एहसास नहीं होता।

यह मुझे आशाहीन नहीं बनाता। मैं अपने आपको याद दिलाता रहता हूँ कि चाहे कुछ भी हो जाए मैं यह काम हमेशा जारी रखूँगा। जागरूक होना ज़रूरी है और मुझे आपके अनुदेश याद हैं कि कई बार प्रयत्न करना भी ज़रूरी होता है। इस दौरान मैं पीछे को जाकर 'मैं' में डूब जाता हूँ और देखता रहता हूँ – साक्षी भाव से। गुरूजी! क्या मुझे आपका आशीर्वाद मिलेगा?

एडजीः

मेरा आशीर्वाद सदा ही तुम्हारे साथ है। जब कुछ भी नहीं होता और तुम चाहते हो कि कुछ हो तब यह स्थिति बहुत मुश्किल लगने लगती है।

चेतना से हटने के बाद, तुम कारण अवस्था को पार करके, किसी नई बहुत ही अलग चीज़ पर आ जाओगे। हम देखेंगे कि तुम्हारा अनुभव क्या होगा। चेतना भिन्न लोगों को भिन्न पहलू दिखाती है, ताकि वे जब उसकी बात करें तो हर एक के पास एक नया ही संदेश हो – बाँटने के लिए।

तुम जो कर रहे हो, उसे जारी रखो। 'मैं' के एहसास के प्रति पूरी स्पष्टता लाओ। एक 'मैं' विचार है और एक 'मैं हूँ' एहसास है। ये दोनों भिन्न हैं। 'मैं' विचार के आर–पार देखने पर और यह जानने पर कि वस्तुएँ मन का निर्माण हैं और यह मन तो है ही नहीं, जो एहसास होता है वह पहली मुक्ति है। कई बार जब कुछ दिखता है तो, 'मैं हूँ' एहसास भी गुम रहता है तब वह संसार जिसे तुमने कभी जाना था वह नहीं रहता, जहां कि हर चीज़ वैसी ही दिखती है जैसी तुम्हें जागृत अवस्था में दिखती है। लेकिन तब तुम एक नई पहचान बनाते हो अपने संसार की बाहरी और अंदरूनी पूर्णता के साथ। तब शरीर की पहचान बिल्कुल भी नहीं रह जाती। शरीर को न पहचानना अब पूर्ण रुप से हो जाता है। इसलिए शून्यता पर उतना ध्यान मत दो – 'मैं हूँ' और 'मैं' पर ध्यान केंद्रित करो।

राजीवः

गुरूजी, कुछ चीज़े मैं कहना चाहता हूँ, अपने 'मैं' विचार और 'मैं हूँ' अवस्था के अनुभव के बारे में। 'मैं हूँ' एहसास मेरे हृदय के पास होता है। यह एकात्मकता या एक गहन प्यास उस हर चीज़ के लिए होती है, जिसका मैं साक्ष्य करता हूँ। यह एक असीम प्यास की भावना है जो बहती रहती है और किसी में पिघलना चाहती है, पर कोई दिखाई नहीं देता क्योंकि हर चीज़ इतनी पूर्ण है अपने आप में।

ऐसा भी समय आता है जब 'मैं विचार' होता है और ऐसा भी समय आता है जब वह नहीं होता है। ज़्यादातर जब मुझे 'होने' का एहसास होता है, तब कुछ विचार हो सकते हैं, लेकिन उनसे पहचान नामुमकिन होती है। उस स्थिति में सिर्फ एक ही चीज़ रहती है – 'मैं हूँ' और जो कुछ भी मुझे दिखता है वह सब नहीं है इसका आभास होता है। यह अवस्था तो असीम नशे की सी होती है। उस समय 'मैं' विचार नहीं होता, सिर्फ परमानंद होता है।

'मैं विचार' से मेरा मतलब है – विचारों से एक पहचान होना, ना कि विचारहीन होना। मैं कई बार विचारों के बहाव को रोक सकता हूँ क्योंकि मैं विचार की शुरुआत में ही जागरूक या सजग हो जाता हूँ।

कई बार वहाँ 'होने' का एहसास होता है, लगता है कि सबकुछ ठीक है। कोई भी बाहरी हलचल नहीं है और हर चीज़ सरल और कोमल है। असली परीक्षा तो तब होती है जब मन को किसी अनहोनी का आभास होता है। यह वो समय है जब 'मैं विचार' अपनी तीव्रता से मेरे हृदय पर महसूस होता है जो खुशगवार भावनाओं को नहीं लाता।

वह 'मैं विचार' तब ज़्यादा उजागर होता है, जब कोई मुश्किल आए या कोई व्यक्तिगत हानि हो या फिर कोई दुर्घटना होने को हो। उस समय साधना का नतीजा भी अलग होता है।

लेकिन यह आल्हादी चेतना और एकात्मकता का अंदरूनी बहाव वैसा ही रहता है। भले ही 'मैं विचार' से मेरी पहचान भी होती रहे यह वास्तव में एक मिली–जुली भावना है।

एडजी, यह पहचान कब सेवानिवृत्त होगी? क्या यह 'मैं विचार' कभी सदा के लिए मर पाएगा? यह बहुत परेशान करता है, जब तक रहता है।

शुद्ध एकात्मकता अवस्था तो वो है, जिसमें 'मैं विचार' पूरी तरह से गुम होता है।

एडजीः

यह 'मैं विचार' कभी नहीं मरता। तुम इसका भ्रमित स्वरुप देखते हो और यह किसी से भी जुड़ा हुआ नहीं है। जब तुम खालीपन देखते हो तब सबकुछ खाली लगता है, क्योंकि हर चीज़ इस 'मैं विचार' पर निर्भर है। फिर कहीं पर भी कुछ भी नहीं है, सिर्फ एकात्मकता है।

तो तुम्हारे अंदर अब भी कुछ है, तो 'मैं' को वास्तविक रूप देता है। जैसे कोई और जीवात्मा अस्तित्व में है। लेकिन कोई और जीवात्मा नहीं है। तुम वास्तव में नहीं हो।

राजीवः

मैं हमेशा यह प्रश्न पूछता हूँ कि 'मैं विचार' उभरता ही क्यों है, जबकि मुझे पता है कि यह एक भ्रम है? मुझे पूरे विश्वास के साथ पता है कि यह सच्चाई नहीं है। मेरी जागरूकता एक ही क्षण में इसका रहस्योद्घाटन कर देती है। यह 'मैं विचार' जो भी आशा या निराशा दिखाता है – एक बहुत बड़ा असत्य है, कल्पना है। मैं हमेशा ही देखता हूँ , जब एक विचार अपनी पहचान करवाने के लिए डरता है, तो मैं सिर्फ मुस्कुराता हूँ। अब तो यह फौरन हो जाता है। 'मैं विचार' के प्रति जागरूक होने में अब ज़्यादा प्रयत्न नहीं करना पड़ता। अब मैं ज़्यादा ही संवेदनशील हो गया हूँ, 'मैं विचार' को पकड़ने में। पर शायद यह मेरा अंदाजा था कि सिद्ध आत्माओं के लिए विचार पूरी तरह गायब हो जाते हैं। अब मुझे पता है कि ये विचार कभी मरते नहीं। ये सिर्फ आते–जाते रहते हैं जैसे भावनाएँ, 'मैं' पन, स्वप्न इत्यादि इत्यादि। जो रह जाता है पार्श्वभूमि में, वह 'मैं हूँ'।

एडजीः

अच्छा है। तुम उसके आर–पार देख सकते हो। सारे ख्याल, विचार इस तरह के ही हैं। सारा विज्ञान भी इसी तरह का है, कोई अणु, परमाणु और तत्व नहीं। यह सब सामूहिक धारणाएँ हैं, उतनी ही असत्य जितनी कि 'आज के फ्रान्स का राजा' (प्रेज़ेन्ट किंग ऑफ फ्रान्स)।

यह हमारे संसार के लिए भी उतना ही सच है। रुप, स्थान और समय के नए संसार की रचना तब होती है, जब मन आकारहीन पर आकार का जाल फैला देता है।

जब सोचनेवाला मन कई समाधिओं से गुज़रता है तब इन परतों के पीछे का रहस्योद्घाटन होता है – जो एक आकारहीन संसार है। तब ही उस दृश्य का दर्शन होता है जिसे तुमने 'झलक' का नाम दिया या वहाँ दृश्य और दृष्टा में कोई भेद नहीं होता – वे अलग नहीं रह जाते। मन इस अवस्था को पारम्पारिक मानचित्र समझकर हम पर थोप ही नहीं सकता। जैसा तुम्हें पता है, यह एक असीम आनंद की अवस्था है। फिर भी यह आखिरी पड़ाव नहीं है, क्योंकि यह वह संसार है, जो अब भी इंद्रियों के अनुभवों और शरीर के अस्तित्व से चलता है। तुम इन सबसे बिल्कुल परे हो।

जिस 'मैं' का तुम एहसास करते हो और जिसमें तुम डूबने की कोशिश करते हो, वास्तव में वह तुम नहीं हो। यह तो तुम्हारे सच्चे स्वरुप की ओर जाने का मात्र एक रास्ता है।

राजीवः

गुरूजी, पिछली रात ध्यान अपने आप हो गया। मैंने कुछ नहीं किया, सिर्फ उसके साथ–साथ चलता गया। किसी भी प्रकार का कोई प्रयत्न नहीं किया। मैं लेटा हुआ था और अपने तीसरे नेत्र पर कुछ हलचल महसूस कर रहा था। 'मैं होने' की अवस्था मेरे हृदय केंद्र पर गोते खा रही थी और तीव्र लालसा और अविवरणीय हर्ष के छोटे–छोटे फुव्वारे छोड़ रही थी। मैंने निश्चय किया कि मैं सो जाने की बजाय ध्यान करूँगा।

मैं अपने साधना के कक्ष में चला गया और निश्चय किया कि जो होनेवाला है उसके साथ–साथ बहने की बजाय मैं उसे ध्यान से देखूँगा और निरीक्षण करूँगा।

यहाँ कोई भी दिशा–निर्देश नहीं था, कोई प्रयोजन नहीं था, ना कोई प्रयत्न था। यह महत्वपूर्ण नहीं था कि यहां विचार है या नहीं लेकिन एक अंदरूनी अलग प्रकार की उथल–पुथल ज़रूर थी। असल में, मैं इसे अव्यवस्था कहूँगा। हर चीज़ अपेक्षा से अलग थी और इच्छानुसार नहीं थी।

मैं इसपर बहुत गौर कर रहा था, लेकिन फिर भी मैं डगमगा रहा था और इसमें खिंचा चला जा रहा था।

मेरे दिल की धड़कनों और सांसों ने एक बहुत तेज़ गति पकड़ ली थी, मैं ध्यान से देख रहा था – क्या हो रहा है। इसने मुझे भयभीत नहीं किया क्योंकि यह परमानंद को भोगने के लिए एक पूर्ण समर्पण था। दिल में आनंद हिलोरे ले रहा था। मुझे घर के बाहर कुत्ते भौंकते हुए सुनाई पड़ रहे थे और फिर मुझे लगा कि मैं अपनी ही सांस हूँ। कोई और भावना नहीं थी। अचानक ही मुझे लगा कि कुछ नहीं है सिर्फ 'मैं हूँ' जिसने अब सांस का रुप ले लिया है और फिर वह भी गायब हो गया।

शायद मैं एक स्वप्नहीन अवस्था से उठा ही था कि जब मैंने एक प्रतिरूप तीसरे नेत्र पर देखा। मैंने उसे देखा और सोचा कि यह अति सुंदर अनुभव है, लेकिन तभी वह गायब हो गया।

कुत्ते अब नहीं भौंक रहे थे। लगता है बीच़ में कुछ समय बीत गया था कुत्तों के भौंकने में और तीसरे नेत्र पर उस प्रतिरूप के फिर से प्रकट होने में।

दिल की धड़कन और सांस अब सामान्य हो गई थी। मुझे पता ही नहीं चला वे कब ठीक हो गए।

मेरे नियंत्रण में कुछ भी नहीं था। यह सब अपने आप हो गया। पीछे की ओर 'मैं' में जाकर मैंने तो सिर्फ इसके साथ बहने का निश्चय किया था।

एडजीः

बहुत अच्छे। शून्यता थी और शांति थी।

इसके बाद भी तुम्हें यह पता था कि तुम हो। जानना तो मन का काम है। मन के बिना कोई जानकारी नहीं है, सिर्फ 'होना' हैं।

जब मन जागा तो तुम्हें पता चला कि तुम तब एक ही थे, उस दौरान जबकि तुम्हारा कोई जानना ही नहीं था।

धीरे–धीरे ये घने बादल हट जाएँगे और तुम अपने सबसे गहरे स्तर पर, इस 'होने' की अवस्था को पहचान लोगे और यह भी जान लोगे कि यह हमेशा तुम्हारे अंदर रहती है।

यहीं शब्दों की सबसे बड़ी मुश्किल है। वो ही शब्द इस्तेमाल करने के बावजूद भी तुम किसी और के अनुभव या समझ को नहीं जान सकते।

राजीवः

हाँ, गुरूजी। शून्य या कुछ भी न जानने की अवस्था में कुछ समय व्यतीत करने के बाद मेरे तीसरे नेत्र पर एक चिन्ह सा उभरता है। एक तरह की बेचैनी होती है और एक ध्यान का प्रतिरूप दिखता है। दोनों बार यह प्रतिरूप ज्योमेट्री के आकार के थे। लेकिन एहसास यह था जैसे कि मैं किसी अज्ञात क्षेत्र में घुस रहा हूँ।

यह मन ही ऐसा कहता है और कार्यरत हो जाता है, जिससे मैं चेतना में वापस आ जाता हूँ। मेरे विचार से थोड़ा समय बीतने के बाद ही तीसरे नेत्र पर प्रतिरुप प्रकट होता है। यह ही मेरे विचार में शून्य अवस्था है या न जानने की अवस्था है। मैं उस बिना अनुभव की अवस्था में विश्राम करनता हूँ। जब मैं वापस आता हूँ तो सारी समझ और सारे अनुभव बाद में आए विचार हैं।

क्या मृत्यु के बाद यही होता है, गुरूजी? क्या हम एक गहन निद्रा अवस्था में चले जाते हैं जहाँ पर कोई अनुभव नहीं होता।

क्या यह थोड़ा सा निराशाजनक विचार नहीं है कि वहाँ वास्तवमें कुछ नहीं होता? वे सब जिन्होंने इस अवस्था को जीवन काल में किया है और फिर वे सब भी अपने जीवनोपरांत ही पा सके हैं, शारीरिक मृत्यु के बाद एक ही तरह की उस शून्य अवस्था में हो जाते हैं, जहाँ सिर्फ गहरी नींद है।

गुरूजी, अपनी अज्ञानता के लिए मैं माफी चाहता हूँ, लेकिन इन दो प्रकार के लोगों में क्या फर्क रहा अगर वे अंत में एक ही नतीजे को प्राप्त होते है।

मुझे अवास्तविक 'मैं विचार', भावनाएँ और चेतना के एकात्मकता, परमानंद के प्रेम की समझ है। मैं अपने आस–पास एक मनुष्य के द्वारा दूसरे मनुष्य को दी गई यातनाओं को देखता हूँ और तब मुझे एहसास होता है कि इस परमसत्य को ढूँढ़ना और अपने आप में खो जाना ज़्यादा अच्छा है। यह उसे खोजने के सारे प्रयत्न को उचित करार देता है। मुझे माँ चेतना से और अपने पुराने गुरूओंसे जो आशीर्वाद मिला है – यह उसी के कारण आई है।

लेकिन गुरूजी, क्या यह सब यहीं समाप्त हो जाता है? मेरा मतलब है जब हम अपना शरीर छोड़ देते हैं तो क्या उसके बाद कुछ भी नहीं है? हम सब क्या अपने स्रोत में वापस समा जाते हैं?

एडजीः

व्यक्तिगत रूप से कोई भी अमर नहीं हो सकता। तुम अब भी अस्तित्वहीन हो – तुम हो ही नहीं। तुम्हारा अस्तित्व एक भिन्न हस्ती के तौर पर सिर्फ मन का उपजाया हुआ एक भ्रमित रूप है और तुम्हारा मन हमेशा नवीन अनुभवों के लिए भूखा है।

जब तुम्हारा शरीर मर जाता है तो भिन्न शरीर भिन्न तकदीरों के साथ पैदा होते है लेकिन इन सब में वही चेतना होती है। निज अस्तित्व के होने का वही तत्व होता है।

चेतना अपनी पूर्णता में अमर है और अजर है, ना कि राजीव या एड के तन–मन का व्यक्तित्व मरने से पहले तुम्हारा मकसद इस अनुभवजन्य चेतना के स्रोत को ढूँढ़ना है, फिर तुम्हें पता चलेगा कि तुम्हारा सच्चा मूल हमेशा जीवन और मृत्यु से अनछुआ रहता है। यही सुरक्षा, खुशी और शांति है।

लेकिन फिर भी जितना ज़्यादा हम उसको मिलते है, वह अज्ञान की अवस्था उतनी ही ज़्यादा स्पष्टता से अनुभव होती जाती है। यह तब तक होता है, जब तक वह एक लगातार होने का अनुभव नहीं बन जाता। तब इसमें कोई फर्क नहीं पड़ता कि आपको लगातार कुछ जानने का अनुभव हो रहा है या नहीं।

अब भी वह जानने की अवस्था एक दिन में आठ घण्टों के लिए गायब हो जाती है। लेकिन यह वही मुख्य चेतना है, जो ज्ञान बनकर किसी और जीव में प्रबल हो जाती है और तुम न जानने की अवस्था में जीना जारी रखते हो। इन सबके बावजूद जागने पर आठ घण्टों तक का अनुभवहीन होना तुम्हें बिल्कुल परेशान नहीं करता होगा, है ना?

यह तो तुम्हारा मन है, जो एक ना खत्म होने वाली कहानी बुनता है, बिना इस बात को जाने कि निद्रा अवस्था सच में होती क्या है। इस वजह से यह एक निराशापूर्ण, बेमतलब अंत लगता है। वास्तव में जब हमें निद्रा अवस्था का सही ज्ञान हो जाता है तो जागृत चेतना और पृथ्वी पर जीने की इच्छा हम में अभाव हो जाता है।

जितना ज़्यादा अपने अंदर जाकर, अपने अस्तित्व की सत्यता को जानोगे उतनी ही कम परवाह तुम्हें इस घटनात्मक संसार की होगी। जब मृत्यु आएगी, तब तुम पहले से ही इस सांसरिक दायरे से परे होओगे और वह तुम्हारे लिए कोई मतलब नही रखेगी।

राजीवः

गुरूजी, होने की अवस्था से क्या यहां आपका मतलब अपने अंदर जाना है?

इस अवस्था में 'मैं' दिन भर के अनुभवों में असल में एक साक्षी के रूप में ही अधिक होता हूँ। मैं जो भी अनुभव करता हूँ, वह चला जाता है। जैसे–जैसे दिन बीत रहे हैं, वैसे–वैसे पार्श्वभूमि में 'मैं' भी ज़्यादा प्रबल होता जा रहा है।

वहाँ दुःख है, पर वह चला जाता है।
वहाँ हर्ष है, पर वह भी चला जाता है।
वहाँ एकात्मकता है, पर वह चली जाती है।
वहाँ कभी–कभी 'मैं विचार' है, पर वह चला जाता है।
शरीर में दर्द होता है, पर वह भी चला जाता है।
सब भावनाएँ भी चली जाती हैं।

सबकुछ सामान्यतः चलता चला जाता है और वह बिना प्रयत्न ध्यान की अवस्था इस समझ को उजागार करती है कि वह पृष्ठभूमि ही स्वयं का सच्चा स्वरूप है। और ध्यान के समय जितनी जानकारी अज्ञान अवस्था की बढ़ती जाती है, उतनी ही पार्श्वभूमि प्रकाशित हो उठती है।

मुझे शायद झलक से कुछ ज़्यादा जानकारी अब मिल रही है, क्योंकि कोई भी चीज़ अब ज़्यादा समय तक अपने आपको मुझसे जोड़ नहीं पाती है।

एडजीः

हाँ, तुम सही हो। बिल्कुल सही।

जैसे–जैसे तुम अपनी इस अवस्था को समझते जा रहे हो वैसे–वैसे हर्ष बढ़ता जा रहा है और तुम्हारी तन–मन (शरीर/मस्तिष्क) के साथ गलत तादात्म्य खत्म होता जा रहा है। फिर तुम एक व्यक्तिगत चेतना नहीं, बल्कि एक सार्वलौकिक बन जाते हो। यह परिवर्तन तुम्हारे अंदर होता आ रहा है। फिर यह अवस्था सर्वव्यापी हो जाती है और यह संसार लगातार एक स्वप्न लगने लगता है।

राजीवः

हाँ, गुरूजी। मेरा यह परिवर्तन आप की ही दया और आशीर्वाद से हो रहा है।

मैं कर्मों के बारे में समझ सकता हूँ। 'मैं' अपने सच्चे स्वरूप में रहकर भी सारे दुःख और भावनाओं को देखता हूँ इसलिए दुःख और मानसिक उतार–चढ़ाव होते हैं, लेकिन फिर ये भी सब चले जाते हैं। मैं काफी संवेदनशील हूँ या कि इतना सजग हूँ कि उनका आना जाना पहचानता हूँ लेकिन मैं इन्हें अनदेखा कर देता हूँ, इन्हें जाने देता हूँ या कई बार उसका हल ढूँढ़ता हूँ। मैं इनसे कोई तादात्म्य नहीं बनाता, न ही सोचता हूँ कि यह मेरे सच्चे स्वरूप के साथ हो रहा है। तो शारीरिक दर्द है, दिल में दर्द है, 'मैं विचार' है लेकिन इनमें कुछ भी 'मैं' नही है। सब कुछ बीत जाता है। यह सब मात्र अनुभव है। उस मायने में कर्म शरीर और मन के हैं ना कि पार्श्वभूमि के 'मैं' के। यह मैं स्पष्टता से समझता हूँ। मैं न विचार हूँ न शरीर। यह यातनाओं से पहचान बहुत कम समय तक ही सीमित है और यह जल्दी ही बीत जाती है और मैं अपने सच्चे स्वरूप में बस जाता हूँ, साक्षी बन जाता हूँ।

लेकिन गुरूजी, मैं पुनर्जन्म को नहीं समझ पा रहा हूँ। कौन इस पुनर्जन्म के चक्रव्यूह में फँसा हुआ है, अगर वह राजीव और एडजी नहीं है तो?

तो क्या अपने गुरू की शारीरिक मृत्यु के बाद उनसे बातचीत मुमकिन है? कृपया मृत्यु की अवस्था के बाद की स्थिति पर थोड़ा प्रकाश डालिए।

एडजीः

पुनर्जन्म होता ही नहीं है। तुम अब भी नहीं हो तो तुम्हारा पुनर्जन्म कैसे हो सकता है? यही सत्य है।

ऐसा होता है कि चेतना आगे चलती रहती है और हम दोनों से बहुत अलग एक नई चीज़ उत्पन्न करती है।

दूसरी ओर तुम अपने सच्चे स्वरूप की पहचान के बाद, इस दुनिया को स्वेच्छा से छोड़ देते हो और आनंद एवं असीम शांति में सदा के लिए बस जाते हो।

जब उस दायरे के बाहर की अवस्था और तुरिया स्पष्ट हो जाती है तब निचले स्तर की इंसानी चेतना गायब हो जाती है और तुम्हें इस इंसानी शरीर में जीना नामुमकिन लगने लगता है जबकि यह ज़्यादातर लोगों के लिए एक आम ज़िन्दगी हैं

यह वास्तव में एक स्वप्न ही है और इस सच्चाई को समझ लेने के बाद तुम्हारा इसमें शामिल रह सकता नामुमकिन है।

यह संसार फ़िज़ूल और क्रूर लगता है।

रॉबर्ट को तो वास्तव में इस दुनिया में रहने के लिए सुविचारित कार्य करने पडते थे, ताकि वह इस संसार में रह पाए नहीं तो वे बहुत आसानी से इस जीवन के बहाव से दूर हो जाते।

इसलिए मैं भी अपने आपको पशु राहत के कार्यों से जोड़ कर रखता हूँ या फिर मार्गदर्शन करता हूँ – इस संसार में रह पाने के लिए ही।

पुनर्जन्म नहीं है क्योंकि तुम्हारा कोई अस्तित्व ही नहीं है, तुम हो ही नहीं। तुम बस एक अस्थाई रूप हो। पूर्णता से अपनी पहचान जोड़ो न कि अपने या मेरे शरीर से, और फिर उस पूर्णता के भी पार चले जाओ।

तुम देखते हो रॉबर्ट मेरे द्वारा कार्य करते हैं लेकिन वे मुझसे बातचीत नहीं करते। मैं तो मात्र उनकी कठपुतली हूँ। और शायद वे भी अपने बारे में यही कहेंगे, वे तो स्वयं के अस्तित्व में, अपने होने में महर्षि रमण को व्यक्त करते है। इसका मतलब है कि हम सब सिर्फ चेतना की अभिव्यक्तियाँ हैं जो अपने आपसे बातें करती हैं और इसके साथ–साथ हम चेतना से परे भी हैं – एक साक्षी के तौर पर।

लेकिन व्यक्तिगत शरीर और मन से पहचान बनाने के बजाय हम एकात्मकता, शून्यता और परम सच से अपनी पहचान बढ़ा सकते हैं। हर व्यक्ति का चेतना से परे अनुभव और उन्हें व्यक्त करने का एक अलग ही तरीका होता है।

योगिओं का यह कहना है कि कारण शरीर ही पुनर्जन्म लेता है, न कि स्थूल शरीर। जब तक कारण शरीर से मुक्ति नही मिलती, पुनर्जन्म होता रहता है। रॉबर्ट कहते हैं कि पुनर्जन्म उनका ही होता है जो अपने आपको वास्तविक समझ लेते हैं। यह फिर भी एक सिद्धांत ही है। व्यक्तिगत रूप से मैं इन सारी चीज़ों में ज़रा सा भी विश्वास नही करता। सिद्धांत तो उन लोगों के लिए होते हैं जो बहुत ही व्यस्त मन के हैं और जिन्हें स्पष्टीकरण अच्छा लगता है क्योंकि वह इस तरह के ज्ञानपूर्ण मनोरंजन का मजा लेते हैं क्योंकि यह उनका झूठा सुरक्षा कवच होता है। वे इसमें सुरक्षित महसूस करते हैं। इन सबसे कहीं अच्छी हैं – अज्ञानता।

मुझे तो लगता है अपने तरीके से लगातार चेतना एक रहस्योद्घाटन करती है और तन व मन अदने से खिलाड़ी हैं।

जहाँ कर्म की बात आती है, मैं अपने आपको एक न्यायाधीश समझता हूँ और उसके अनुसार कर्म करता हूँ। तुम न्याय हो, कर्म नहीं। तुम्हें न्याय का स्वरूप बनना है। इसमें कोई हर्ज़ नहीं – अगर संसार को उसकी ही नज़रों से देख और साथ ही साथ न्याय की ऊर्जा भी बन जाते है यह मानकर कि संसार यह प्रकटीकरण असल है, क्योंकि सापेक्ष रूप से यह वास्तविक ही है।

राजीवः

एडजी, पिछली रात एक तरह से तो बहुत खराब गुज़री और दूसरी तरह से इतनी खराब भी नहीं थी।

मैं लेटा हुआ था लेकिन नींद नहीं आ रही थी। एक घण्टा बीत गया और फिर दो। मुझे थोड़ी फिक्र हो रही कि विचार मुझे इतना परेशान क्यों कर रहे हैं। बहुत सारे विचारों का बहुत तेज बहाव हो रहा था और मैं उन सब का साक्ष्य कर रहा था। यह सब अपने आप हो रहा था। मैं उनका साक्ष्य करने से अपने आपको रोक नहीं पा रहा था। जब तीन घण्टे गुज़र गए, मुझे लगा कि अब मैं बिल्कुल पागल हो जाऊँगा। मेरा एक हिस्सा कह रहा था कि यह सब असत्य है, एक भ्रम है, लेकिन मन का दूसरा हिस्सा कह रहा था कि मैं कुछ गलत कर रहा हूँ। ये सब प्रयोग बंद करके मुझे फिर से इंसान जैसे ही जीना चाहिए। इच्छाओं के दायरे में फिर से जीऊँ और जीवन का आनंद लूँ।

मैं इन सबका साक्ष्य कर रहा था और सतर्कता से इनसे तादात्म्य न बनाने का पूरा प्रयत्न कर रहा था, क्योंकि मुझे पता था कि यह सब गुज़र ही जाएगा।

लेकिन जैसे–जैसे रात गुज़र रही थी वैसे–वैसे यह कार्य और भी मुश्किल नज़र आ रहा था। मैं थोड़ा परेशान होने लगा था। मैंने देखा कि वास्तव में मेरा ध्यान गहनता से अपनी तीसरी आँख पर था और मैं विचारों के आने–जाने को देख रहा था। मेरे मन में यह विचार आया कि शायद आगे फैली हुई शून्यता को देखने की वज़ह से ही इतने विचार आ रहे थे।

यह बहुत ही अजीब बात थी। कहाँ चला गया था वह परमसुख और परमानंद?

पहली बार मेरे मन में एक शक खड़ा हो गया और थोड़ा डर भी लगने लगा। मेरा दिल उदास हो रहा था। वह एक बहुत ही अंधेरी रात थी। ऐसा लग रहा था कि मेरा मन बहुत सतर्क है लेकिन मेरा शरीर बहुत थक गया है। मैं बहुत मजबूर और हताश हो रहा था। मेरा मन मुझसे कह रहा था कि देखो सब लोग चैन से कैसे सो रहे हैं और तुम अपना सुख, चैन, नींद सबकुछ खो रहे हो। तुम अपनी बनी बनाई ज़िंदगी और अपने परिवार में हलचल ला रहे हो, उथल–पुथल मचा रहे हो।

फिर भी मेरे ही एक दूसरे हिस्से ने कहा कि वह मन जो कह रहा है उसे अनसुना कर दो। कुछ भी हो, पर यह सब विचार ही थे – मैंने यह समझ लिया था। एक मन दूसरे से लड रहा था। सिर्फ साक्षी होते हुए भी, मैं इस युद्ध में उलझ गया। आगे फैली हुई शून्यता जीवंत थी और जीवंत था मेरा मन। आगे शून्यता में हलचल हो रही थी और उस हलचल पर इस मन की पकड़ और भी तेज होती जा रही थी। वहाँ पर बिल्कुल भी शांति नहीं थी।

फिर सुबह के पाँच बजे अचानक ही मुझे आपकी शिक्षा याद आई। एक आवाज ने जैसे कि मुझे कहा 'अब साक्ष्य करना बिल्कुल बंद कर दो'। अपने सच्चे स्वरूप की ओर पीछे मुड़ो और वहीं पर रहो। सिर्फ उस अवस्था में ही सजग रहो। ऐसा अभी ही करो।

मैंने अपना ध्यान शून्यता और विचार से भी हटा लिया और पृष्ठभूमि में चला गया। पहले तो लगा यह शरीर की पूर्णता है और फिर यह शरीर से भी परे लगने लगा।

जैसे ही मैं 'उस' से जुड़ा, सारे विचार गायब हो गए, एक स्वाभाविक खुशी और सुरक्षा का एहसास हुआ। यह एहसास बस उस बच्चे के एहसास जैसा था, जो बहुत खोज़ने के बाद आखिर में अपनी मां की गोद में बैठने का सुख पाता है। ऐसा ही मेरी सुरक्षा और प्यार का एहसास था। पृष्ठभूमि में जाने से एक स्वाभाविक सौम्यता और शांति आ गई, हर्ष आ गया और परेशान करने वाले विचारों से मुक्ति मिल गई।

इसके बाद मुझे पता चला कि मैं स्वप्न अवस्था में हूँ और मुझे यह ज्ञान भी है कि मैं सपना देख रहा हूँ और आखिरकार, मैं स्वप्न में भी खुश था। मैं उसके बाद सिर्फ तीन घण्टे सोया और ऐसा नहीं लगा कि मैंने कुछ ज़्यादा नींद खो दी हो।

पहली बार मुझे यह एहसास हुआ था कि तीसरी आँख को गहनता से देखना और शून्यता को खोजना, वास्तव में एक अच्छी प्रक्रिया नहीं है। इससे तो अच्छा है कि पीछे की ओर मुड़ कर सिर्फ उस अवस्था से एकजुट होने का प्रयास किया जाए। वहाँ असीम सुरक्षा और स्थिरता है। बाकी सब एक खेल है।

एडजीः

अच्छा पाठ पढ़ा है।

हाँ, मैंने भी शून्यता की खोज में बहुत साल लगाए हैं। यह मैंने उसी गहनाता से किया है, जैसा किसी और ने किया होगा। लेकिन चेतना के स्पष्ट प्रकाश को देखने के प्रयास में, हम शून्यता को इतना खोल देते हैं कि उस स्थान में विचारों के खालीपन और इस शरीर के लिए पहले से भी ज़्यादा जगह बन जाती है।

शून्यता को खोजने से कोई ज्ञानोदय नहीं हो सकता।

इसका मतलब है कि यह स्पष्ट शून्यता का अनुभव अपने अंतर्मन में एक चमत्कारी काल्पनिक जगह बना लेता है। इस काल्पनिक जगह से हम यह देख सकते हैं कि कैसे हमारे विचारों का जाल एक ऐसे संसार को जन्मता है, जो हमसे बिल्कुल परे और अलग है।

पीछे की ओर अपने अंतर्मन में जाने से खुशी तो मिलती ही है, चाहे फिर हम सिर्फ अपने शारीरिक एहसास में ही क्यों न सीमित हो।

शून्यता तो एक दृश्य जैसी चीज़ है, जो मस्तिष्क और आँखों से जुड़ी हुई है। पर 'मैं–एहसास' में ऐसा नहीं होता।

यह तुम्हारे लिए अच्छा है।

हजारों में से किसी एक को भी यह समझ में तब तक नहीं आएगा जब कि बहुत लंबे समय तक वे अपना ध्यान अंदर की ओर न लगाएँ और अपने अंदर बसे संसार को न खोजें।

कुछ नव अद्वैतों को (द्वारा) ऐसा करना समझा आ सकता है या उन्हें यह लग सकता है कि आत्म जागरण के लिए यह सिर्फ तुम्हारा व्यक्तिगत अनुभव है ना कि सार्वभौम अनुभव। और कुछ तो यह सोचते हैं कि विचारहीन जागृत चेतना ही परम सत्य है।

राजीवः जी हाँ, गुरूजी। अगर आप नहीं होते तो मैं यह कभी भी नहीं सीख पाता।

सिर्फ पीछे की ओर जाना, मुड़ना ही सबकुछ है।

मैंने तो शून्यता की गहनता से खोजने का कार्य समाप्त ही कर लिया है। यह किसी के अस्तित्व, मन और विचारों में पूरी तरह हलचल मचा देता है।

यह एक बहुत ही व्यर्थ प्रक्रिया है जब कि मैं यह दावे के साथ नहीं कर सकता कि ऐसा साधक अब तक क्यों करते हैं। शायद यह गहन साधना की एक सबसे बड़ी समस्या है। बहुतों को यह लगता है कि साधना सिर्फ तीसरी आँख की खोज है और वे इस गलत दिशा की ओर चल देते हैं, सच्चे मार्ग से हट जाते हैं। वह तो एक 'होना' है चाहे वह एहसास पूर्ण शरीर में महसूस हो या सिर्फ हृदय केंद्र पर। यहाँ पर ही हम सबको थिर जाना चाहिए। बस हमें सिर्फ यहाँ तक पहुँचने की जरूरत है ना कि अपनी खोज को आगे ही आगे बढ़ाने की। यहाँ मेरा काम पूर्ण हो गया है। आह गुरूजी! आपने कितना बड़ा पाठ पढ़ाया है मुझे पिछली रात को।

मैं आपकी शिक्षा को बहुत महत्व देता हूँ। लेकिन वास्तविक समझ तो सिर्फ सीधे अनुभव से ही मिलती है। मैं इस बहुत महत्वपूर्ण पाठ से गुजरा, पूरी तरह इसमें बह गया और अपना मानसिक संतुलन खो बैठा।

वह 'होने' की अवस्था अपने आप में ही सारी खोज और जानने की इच्छा को मानो पिघला देती हैं।

पीछे की ओर मुड़ना ही सबसे सुरक्षित और स्थिर अभ्यास है। यह एकदम से मन की हलचल को बंद कर देता है। वाह! यह कितनी महत्वपूर्ण सीख है।

इसके बाद अगर कोई भी दिशा–निर्देश न मिला तब भी मैं अपने जीवन को जीने लायक समझूँगा।

राजीवः (एक दो दिन के पश्चात)

मैं अपनी ज्ञान दृष्टि के दायरे में एक बहुत बड़ा परिवर्तन कर रहा हूँ। जैसे–जैसे मेरा जुड़ाव अपने मैं से बढ़ता जा रहा है, आगे का कोई दृश्य न तो मेरा ध्यान पहले की तरह खींचता है न मुझे आकर्षक लगता है। अब यह जैसे मेरे लिए कोई मायने नहीं रखता।

वास्तव में जब से पृष्ठभूमि वाला 'मैं' प्रबल हुआ है, तब से मुझे अपने शरीर, विचारों या चेतना (एकात्मता) का साक्ष्य करने की जरूरत भी महसूस नहीं हो रही है। क्योंकि इनके होने या न होने से कोई फर्क नहीं पड़ता। अब शरीर, विचार, भावनाएँ 'मैं हूँ' अवस्था या एकात्मकता अब सिर्फ एक ही रूप में दिखती हैं और वह है – चेतना।

अब पूरा ध्यान पीछे की ओर खिंचता चला जा रहा है, एक पूर्ण चेतना की ओर। और वह चेतना अपनी पूर्णता में परिवर्तित होती रहती है – कभी प्रकट होती है और कभी गायब हो जाती है। (कभी प्रकट रू‍प में और कभी अप्रकट रूप में)

तो अब चेतना से परे विचारों, शरीर भावनाओं और एकात्मकता का साक्ष्य नहीं होता। यह सब उस पूर्ण एकत्रित चेतना का ही एक हिस्सा है जो प्रकट और अप्रकट होता रहता है। चेतना भिन्न रूप धारण कर रही है – कभी राजीव बनकर तो कभी हर्ष, दुःख, विचार, शरीर यहाँ तक कि 'होना' बनकर भी।

अब जो भी चीज़ अनुभव की जा सकती है वह चेतना ही है और उसका अलग से कोई भी महत्व नहीं रह गया है।

व्यक्तिगत रूप से ये अब मेरे ध्यान को नहीं खींचते। इनका अस्तित्व हो भी सकता है और नहीं भी हो सकता है। मैं सिर्फ उन्हें उसी रूप को देखता हूँ कि जिसमें चेतना को बसना है। मैं इनका साक्ष्य न भी करना चाहूँ तो कोई फर्क नहीं पड़ता।

मैं अपनी इन भावनाओं को शब्दों में सीमित नहीं कर सकता, गुरूजी। मेरे अंतर्मन में एक असीम शांति और हर्ष है और उसके बाहर चेतना के स्तर पर सबकुछ बस एक शोर है। मुझे कई बार एक आंतरिक आवाज सुनाई देती है, जो मेरी पढ़ी और सुनी हुई कई किताबों और गुरूओं की बातों से बिल्कुल विरुद्ध होती हैं और खासकर जिनका तात्पर्य हर विचार को ध्यान से साक्ष्य करने से है या फिर जागरूक होने से। मेरा दिल कहता है कि इन सब पर ध्यान मत दो। 'हूँ' भी न बनो, क्योंकि तुम वह 'हूँ' भी नहीं हो। रात तक मैं एक निराशा के भाव में था। वहाँ पर लाखों एक–दूसरे के विरोधी विचार थे और भिन्न–भिन्न भावनाएँ थीं। डर और शंकाओं ने मुझे पूरी तरह अपने वश में कर लिया था। मैंने स्वयं से सिर्फ कहा कि यह सब भी गुज़र जाएगा। यह 'मैं' नही हूँ। वहाँ घोर अंधेरा था और मैं इस घोर दुःख और अवसाद से घिरा हुआ था।

आज की सुबह बहुत अलग थी। मुझे लगता है कि किसी नई वास्तविकता की सुबह हुई है। शायद कोई साक्षी ही नहीं है, क्योंकि कोई साक्ष्य ही नहीं है और कोई होना भी नहीं है। वहाँ सिर्फ खुशी और शांति है। और कुछ भी अगर है या नहीं है तो उससे कोई फर्क नहीं पड़ता।

एडजीः

हाँ हाँ हाँ। चेतना अपने आप में तुच्छ है, अवास्तविक, परिवर्तनशील और असत्य है। जब वह चली जाती है तो परम सुख होता है। मैं बहुत खुश हूँ कि तुम इतनी दूर इतनी जल्दी आ गए।

राजीवः

गुरूजी, आपके बिना कुछ भी मुमकिन नहीं था। मैं सच में अब बहुत खुश हूँ। शायद यह पिछली शाम की निराशा मेरे लिए जरूरी थी। अब एक सुरक्षा और स्वतंत्रता का एहसास चेतना से भी है।

गुरूजी, आपको शत शत प्रणाम।

एडजीः

धन्यवाद राजीव। जिस स्थान पर तुम अब पहुँचे हो उसे छोड़ना मत। यहाँ पर ही स्थिरता लाओ और विकास करो। आखिरकार मुझे पता है कि रॉबर्ट की सोच हमेशा बनी रहेगी।

वह अज्ञान की या 'न जानने' की अवस्था धीरे–धीरे रहस्योद्घाटन करती रहेगी, लेकिन जिस तरह से चेतना ने किया, उससे बिल्कुल अलग होगा यह।

राजीवः

गुरूजी, आखिरकार, मैं कौन हूँ???

अब मैं अपनी पहचान 'मैं हूँ' अवस्था से बिल्कुल नहीं करता। जो कुछ मैं देखता या अनुभव करता हूँ वह चेतना ही है। अपनी पूर्णता में बिल्कुल अवास्तविक है, असत्य है और सदा परिवर्तित होने वाली है। हर चीज़ जो मेरे आगे है झूठ और अस्थाई है।

लेकिन गुरूजी, इस समझ के साथ–साथ कुछ और चीज़े भी हो रही हैं।

(1) मुझे ऐसा लगता है कि मेरी भावनाएँ और संवेदनाएँ कुछ खो गई है। कभी–कभी एकात्मकता महसून होती है और साथ ही आनंद भी लेकिन मैं इस पर ज़्यादा ध्यान नहीं देता। सब विचारों और भावनाओं की तरह ये भी कोई मायने नहीं रखती। इनके अस्थिर रूप को जानने के बाद, अब मैं इनके आते ही दूसरी ओर देखने लगता हूँ। दूसरों के लिए प्यार और उनके साथ एकात्मकता अब मेरे में नहीं है, जबकि ऐसा पहले नहीं होता था। मैं अब पछता रहा हूँ कि मैं बिल्कुल भावहीन हो गया हूँ।

(2) एक निद्रा की सी अवस्था रहती है और शरीर के पूरी तरह कार्यकारी होने के बावजूद, हर चीज़ नीरस लगती हैं। सिर्फ शरीर और मन अपना काम प्रतिक्रिया (क्रिया नहीं)करते हैं, पर किसी चीज़ में मन नही लगता।

(3) पहले जिस तरह मैं ध्यान लगाकर साक्षी बनता था और हर चीज़ की जागरूकता रखता था, अब वह बात नहीं रही।

(4) अब जब मैं प्रयत्न करके अपनी पृष्ठभूमि के सच्चे स्वरूप पर ध्यान लगाता हूँ तो मुझे कुछ नहीं मिलता। भावनाएँ भी नहीं मिलती, सिर्फ एक निद्रापूर्ण शांति ही होती है।

(5) अब मुझे यह नही पता कि मैं साक्षी हूँ या नही क्योंकि अब पहले जैसी सब में जागरूकता नहीं रही। मेरे आसपास सब चीज़े अपने आप हो रही हैं और क्योंकि यह अवास्तविक हैं, मुझे इनका साक्ष्य करने की जरूरत क्यों है?

(6) मुझे यह भी नहीं पता कि मैं अस्तित्व में हूँ भी या नहीं। (क्योंकि मुझे कोई जान नहीं सकता या मुझ तक कोई पहुँच नहीं सकता)

(7) मैं अपने आपको शून्यता की एक काली पार्श्वभूमि के रूप में देखता, समझता हूँ और मेरे आगे जो कुछ भी हो रहा है वह महत्वपूर्ण नहीं है। मैं केवल प्रयत्न करता हूँ कि पृष्ठभूमि की काली शून्यता बन जाऊँ।

(8) गुरूजी, तब मैं कौन हूँ?

एडजी :
तुम वह हो जिसके साथ यह सब हो रहा है। तुम इस विश्व का आधार हों। तुम वह हो जिसके साथ चेतना का खेल हो रहा है। तुम वह हो जो हर चीज़ के आने और जाने का साक्ष्य करते हो।

तुम अपने आप को वैसे कभी नहीं जान सकते, जैसे तुम अपनी द्वैत को अपने से अलग जानते हो। तुम सिर्फ तुम रह सकते हो और सदा के लिए तुम ही रहोगे।

तो तुम्हें पता है कि यह संसार, यह सोच स्वप्न सब असत्य और अवास्तविक हैं। यह तुम में जोड़े गए हैं। तुम वह हो ऊपरी भ्रमित या नकली जागरण, नींद व स्वप्न चेतना के निकालने के बाद भी रहता और, यानि उससे परे हो।

तुम अपने आपको उस तरह नहीं जान सकते जैसे तुम एक ईंट को जानते हो या फिर किसी और व्यक्ति को या फिर अपने स्वयं के विचार और भावनाओं को। तुम सदा के लिए तुम हो, और तुम जानते हो कि तुम हो

और 'तुम' होने से तुम हो, न कि एक खोज का हिस्सा बनकर। सारी भावनाएँ, शून्यता, स्वप्न, समझ जो तुम्हारे पास हैं, सिर्फ एक कल्पना है। तुम इन सबसे अनछुए हो, अलग हो।

तो अपने आपको ढूँढ़ने के बजाए तुम अपने आप में बने रहो, सिर्फ 'तुम' ही रहो।

राजीव :

गुरूजी, मैं बिल्कुल यही कर रहा हूँ।

सिर्फ 'मैं' बना हुआ हूँ।

लेकिन यहाँ जो प्रश्न उठ खड़ा होता है वह यह है :

मेरा मन मुझे यह एहसास दिला देता है कि कुछ भी नही है – किसी चीज़ का कोई अस्तित्व नहीं है – मेरा भी नहीं। जब मैं गहरी नींद में होता हूँ तो मन या चेतना लुप्त हो जाती हैं और तब पूरा संसार भी लुप्त हो जाता है। सिर्फ शून्यता रह जाती है। वहाँ राजीव कपूर जैसा 'मैं' भी नहीं होता। जो बचता है वह जाना नहीं जा सकता

इसलिए मैं दावे के साथ नहीं कह सकता कि मेरा कोई अस्तित्व है क्योंकि मेरी विनम्र राय में यह संसार स्वयं भी मन और चेतना की रचना है, जो वास्तव में है ही नहीं। इसलिए अस्तित्व भी है। क्योंकि मन है। साथ–साथ मैं दावे के साथ यह भी नहीं कह सकता कि मैं हूँ ही नहीं, क्योंकि मैं तब भी था जब चेतना नहीं थी।

तो मैं जो हूँ वह होने या न होने दोनों ही से परे है। यह एक बहुत बड़ा प्रश्न चिन्ह है।

दूसरे, मुझे विश्वास के साथ जब यही नहीं पता है कि मेरे अस्तित्व है या नही तो मैं साक्षी हूँ या नहीं इसके बारे में आश्वस्त कैसे हो सकता हूँ? जिसे हम आखिर साक्षी समझ रहे हैं, वह नहीं भी हो सकता है। तो फिर, क्या मेरी ही एक कल्पना (अहम् या मन) मेरी दूसरी कल्पना (संसार और जीव) का साक्ष्य है या कुछ और है?

इसलिए मैं पाता हूँ कि जिसे हम साक्षी कहते हैं वह कभी उपस्थित रहता है, कभी अनुपस्थित हो जाता है – दोनों स्थितियों को पाता हूँ।

इस क्षण में, मैं सिर्फ एक ही चीज़ दावे के साथ कह सकता हूँ और वह यह है कि चेतना की पूर्णता, विचार, भावनाएँ, अनुभव व शरीर (एकात्मकता) सभी कुछ असत्य है, अवास्तविक है। ये सब मुझमें जोड़े गए हैं।

लेकिन मुझे इस बात पर पूरी तरह विश्वास नही है कि जिसे मैं 'मैं हूँ' भावना के नाम से जानता हूँ, वह भी इस चेतना का हिस्सा है या नहीं?

गुरूजी, मैं इसे अपनी अज्ञानता में लिख रहा हूँ, अगर चेतना ही अपने आप में असत्य है और धोखा है तो इसके बाद की नई समझ क्या है?

एडजी :

तुमने अपने वास्तविक स्वभाव का अब तक स्पष्टता से अनुभव नहीं किया है। फिर भी अपने तरीके से शायद तुमने ऐसा कर लिया है। तुम्हें यह पता है कि सबकुछ एक कल्पना है। वह ज्ञान तो कल्पना के दायरे से भी बाहर है, यह कल्पना में नहीं होता। यह दावे के साथ ऐसा ही है।

तुम्हें तो पृष्ठभूमि का भी ज्ञान है, जो तुम नहीं हो, लेकिन उसका ध्यान रखना। 'तुम' तक पहुँचने का सीधा रास्ता है। तो यह करते रहो।

'साक्षी' जैसे शब्दों से धोखा मत खाओ। यह एक धारणा है और कुछ ही समय के लिए मददगार है। वास्तव में तो तुम ही सबकुछ हो, लेकिन तुम्हें जड़ को अलग करना होगा, जिसे निसर्गदत ने चेतना का नाम दिया है। यह एक शुद्ध अनुभव है जो इस संसार की झूठी चेतना की उपस्थिति से अनछुआ है।

हाँ, अस्तित्व का एहसास भी केवल चेतना में ही है। तुम तो उससे भी परे हो। तुम हो ही नहीं। तुम अस्तित्व से भी परे हो।

राजीव :

हाँ, गुरूजी। मैंने 'मैं' का अनुभव पृष्ठभूमि की तरह ही किया है। यहाँ स्थिरता और प्रसन्नता है और सारी अलग की हुई चीज़ों का कोई महत्व नहीं है सिवाय पृष्ठभूमि के। सबकुछ ठीक–ठाक था तब तक जब तक कि मन ने मुझे धोखा देकर यह सोचने को मजबूर नहीं किया कि पृष्ठभूमि का 'मैं' भी एकमात्र भ्रम है।

एक भूल थी। इसलिए सारी भावनाएँ ठण्डी पड़ गई थीं। मुझे अपनी गलती का एहसास हुआ और अब मैं वापस अपनी पृष्ठभूमि के 'मैं' पर जाकर, उसके स्वयं के रहस्योद्घाटन का इंतजार कर रहा हूँ।

मुझमें फिर से ऊर्जा आ गई है। मेरे मन ने मुझे बहका दिया था। अब से मैं सतर्क रहूँगा।

एडजी :

इस उदासीनता और शून्यता की पूर्ण अनुपस्थिति का अनुभव जरूरी है, क्योंकि वे ही तुम्हें तुम्हारे पुराने अनुभवों की उसी पिछली तरह से अनुभूति करने से रोकने में, तुम्हारी मदद करते हैं। इस मायने में यह अनुभव तुम्हारे लिए एक तरह से अच्छा था। तुम पूर्ण शून्यता हो गए हो।

और जिस 'मैं' की उपस्थिति का एहसास तुम करते रहते हो वह भी तुम नहीं हो, लेकिन इस पर ध्यान लगाकर ही धीरे–धीरे तुम अपने सच्चे स्वरूप के और भी करीब आ जाते हो और फिर पूर्णता से इसमें खिंचते जाते हो।

राजीव :

हाँ, मुझे इसका एहसास है। सब अनुभव बदलते रहते हैं। अपने मन के अनुसार "द्वैतता" प्रकट होती रहेगी और फिर भी 'मैं' अपरिवर्तित रहूँगा, उनका साक्षी चाहे बनूं या न बनू। उनसे तादात्म्य बनाना या उनका साक्ष्य करना छूट जाएगा, जो बचेगा वह सिर्फ 'मैं' होगा, जो पृष्ठभूमि में रहेगा।

अब मुझे सिर्फ उस 'मैं' में डूबे रहना है।

आज सुबह ऑफिस पहुँचने के बाद, जब मैं अपने मेज़ के सामने बैठा था, मेरे हृदय से एक भाव उठा। मेरे हृदय में एक घण्टा बजा फिर रूक गया और फिर बजा रूका और वह मेरे दिल की धड़कन ही बन गया। मेरे पूरे शरीर में उस घण्टे के बजने से एक आनंद लहर सी उठी। यह एहसास बड़ी सधनता से मेरे दिल में बस गया है, उसे भेदने लगा है और फिर नीचे की ओर जाता हुआ मेरे इस शरीर से बाहर और सृष्टि भी परे हो गया। यह सब जागृत अवस्था में हुआ है, फिर भी मेरे आसपास की हर चीज़ रूक गई और ध्यान देने लायक न रही। मैं जागृत था और मौन, असीम शांति से घिरा हुआ भी था।

वह मधुर घण्टा मुझे कह रहा था कि यहाँ पर रहो और इसमें ही डूब जाओ, इसके आगे कुछ भी सत्य नहीं है।

आह! गुरूजी, आपके प्यार और आशीर्वाद का कोई मुकाबला नहीं है।

एडजीः

क्या यह अद्भुत नहीं है? क्या यह मधुर परम सुख है? क्या कभी तुमने ऐसी असीम शांति और आनन्द की कल्पना की थी? तुम्हारे आगे अभी बहुत कुछ है। तुम्हारा कार्य अभी किसी तरह पूरा नहीं हुआ है।

राजीवः

नहीं एडजी, मैंने इसकी कभी कल्पना भी नहीं की थी। यह अपने आप में ही सक्षम है और मेरे बाहर जो कुछ भी है, उसका इससे कोई मतलब नहीं है। मेरे अंतरमन से एक परम सुख और असीम खुशी का फव्वारा छूटता है।

यह सब आपके आशीर्वाद का फल है गुरूजी, क्या यही स्वात्मा है, एडजी?

एडजीः

नहीं, अभी नहीं। प्रसन्नता तो तुरीया का एक अनुभव है लेकिन फिर भी यह अभी अनुभव मात्र ही है। यह ज्ञानी का एक अनुभव है लेकिन यह कहने को सिर्फ एक अवस्था है, तुरीया तो इसके भी परे है। प्रसन्नता तुरीया में होने का एक अनुभवी परिणाम है लेकिन अपने आप में तुरीया नहीं है।

राजीवः

मेरे साथ कल पहले कभी नहीं होने वाली अजीब घटनाएँ घटी।

पहले तो वे दिल की धड़कने थीं, जो ऑफीस के समय जागृत अवस्था में आई, जो परमानंद के मधुर घण्टों की तरह लगीं और जिनमें मैं पूरी तरह डूब गया। फिर शाम का ध्यान जो मेरी आँखों में खुशी के आँसू ले आया। क्योंकि तब मेरे अंतरमन में, मेरे होने की एक लहर सी उठी और मेरे हृदय की गहराईयों में समा गई। रात की नींद बहुत ही उत्तम थी, क्योंकि मैंने सूक्ष्म और कारण शरीर की घटनाओं का एक बड़े नाटकीय तरीके से अनुभव किया।

सोते समय जैसे ही मैंने 'अपने होने' पर ध्यान केन्द्रित किया, रात्रि के सवा बारह बजे मैंने अपने आपको बार–बार सोते हुए और वापस चेतन होते हुए देखा। फिर शायद मैं सो गया और फिर मुझे ज़ोर से नींद से उठने का ध्यान है। मेरी शरीर में कुछ हलचल हुई, एक तीव्र धक्का सा मेरे शरीर के निचले भाग में लगा और फिर मैं जाग गया। काफी समय गुज़र गया था, रात के दो बज रहे थे। इसका तात्पर्य है कि मैं एक स्वप्नहीन अवस्था में था, क्योंकि मुझे कुछ भी याद नहीं है।

मुझे लगा कि यह अच्छा ही है। इसके बाद मुझे याद पड़ता है कि मैं अपने शरीर के बाहर ऊपर उठ रहा था और एक काली, घूमने वाली, गोलाकार सुरंग में जा रहा था। मैं यह दावे के साथ कह सकता हूँ कि उस समय मैं अपने शरीर के बाहर था और पूर्णतया जागरूक था। अचानक ही सुरंग के अंदर की हलचल ने गति पकड़ ली और मैंने वहीं रूकने का निश्चय किया। मेरे रूकते ही मैं एक स्वप्न लोक में चला गया, जहाँ बहुत सारे काल्पनिक पात्र थे, लेकिन मैं पूरा जागरूक था कि यह एक स्वप्न हैं। मुझे ज्ञात हो गया कि मैं एक स्वप्न के मज़े ले रहा हूँ। फिर मैं जाग उठा और मुस्कुराने लगा। मैंने सोचा कि यह एक बहुत ही अच्छा अनुभव था।

एक अर्थ में ये अनुभव इतने महत्वपूर्ण न हों लेकिन दूसरे अर्थ में महत्वपूर्ण हो भी सकते है क्योंकि मुझे एहसास हुआ कि सब कुछ बदल गया है। स्वप्न आया और गया, चेतना आई और गई लेकिन मैं अब भी वहीं हूँ। जब चेतना ने मुझे छोड़ा तो यह जागृत संसार लुप्त हो गया और स्वप्न में एक नए संसार ने जन्म लिया। जिस मन ने उस स्वप्न को जन्म दिया उसने ही इस जागृत संसार को भी जन्म दिया है – उन सारी परिस्थितियों, परेशानियों और काल्पनिक पात्रों के साथ–साथ।

एडजीः

जिस तरह से इन सबका रहस्योद्घाटन तुम्हारे साथ हो रहा है, उसे देखकर मुझे बड़ी खुशी होती है। यह कितनी मज़ेदार बात है कि एक ही क्षण में ईश्वर तुम्हें जागरूकता भी देते हैं और तुम्हारा मनोरंजन भी करते हैं।

कुछ ही लोगों को इसकी समझ होगी। बहुत से लोग तो अपने मन से अपने मन को समझने की कोशिश करते रहते हैं, जबकि तुम तो चेतना की गहराईयों में तैर रहे हों।

राजीवः

हाँ, गुरूजी। मुझे सिर्फ "मैं हूँ" एहसास को ही पकड़े रहना है। बाकी सब तो एक स्वप्न ही है। मैं जो कुछ भी देखता हूँ या अनुभव करता हूँ उसे कोई महत्व नहीं देता, चाहे वह जागृत अवस्था में हो या स्वप्न अवस्था में। और तब सब कुछ अपने आप ठीक हो जाता है। आप अगर उस परिस्थिति पर ध्यान नहीं भी दे रहे हो, तो फिर भी आपका शरीर वही करेगा जो उसे करना है, यह एक बहुत बड़ा अजूबा है। कोई न कोई शक्ति इन सबका ख्याल रखती ही है, चाहे वह ईश्वर हो या फिर कोई और शक्ति।

एडजीः

हाँ, यही सत्य है, यही सत्य है।

राजीवः

हे परमगुरू, आपके मार्गदर्शन के बगैर मुझे दैवी कवच के बारे में कभी भी पता नहीं चलता। यह कवच "क्या है" को भूलकर हमें अपनी सच्ची अंतर आत्मा पर ध्यान लगाकर, उसमें ही समा जाने में मदद करता है। यह कवच मुझे सदा परिवर्तित होने वाली चेतना और उसके दुःखद नतीजों से सुरक्षा देता है।

आपकी शिक्षा ने बहुत कम समय में मेरे चारों ओर एक मज़बूत दुर्ग बना दिया है, जो हर जिज्ञासु साधक आसानी से पा सकता है और मेरी तरह इस गहराई तक पहुँच सकता है। जब तक साधक चेतना ही को नकारेगा नहीं, तब तक उसे इस आंतरिक दुर्ग का कोई ज्ञान नहीं मिल सकता।

आपकी बताई हुई आसान क्रियाएँ, उन साधकों के लिए एक वरदान समान हैं, जो अपनी आंतरिक यात्रा पर जाने को तैयार हैं और जो सिर्फ साधना के स्तर पर रहने से ही संतुष्ट नहीं हैं। ऐसा करने के लिए भक्ति, वचन–बद्धता, धारणाहीन केंद्रित शिक्षा और सही मार्गदर्शन की ज़रूरत है। तब फिर सबको ही स्पष्टता से परिणाम दिखेंगे।

प्रश्न सिर्फ यह है कि क्या साधक वास्तव में अंदरूनी यात्रा में गोते लगाने को तैयार हैं या फिर अब भी चेतना के ऊपरी खेल ही खेलना चाहते हैं?

एडजीः

बहुत ही गिने चुने साधक तैयार हैं। मेरे विचार में सिर्फ वही साधक जिन्होंने साधना या आत्म–निरीक्षण का बहुत समय तक अभ्यास किया है, इन गहराईयों में जा सकते हैं। सिर्फ उन्होंने ही उन अवस्थाओं का अनुभव किया है, जिन्होंने मन भेदकर उस पार देखने की साधना की है न कि मन का प्रयोग करके ही मन के आरपार देखने की। ऐसे साधकों की संख्या ही ज़्यादा है।

यह मन एक ऐसा यंत्र नहीं है जो तुम्हें अंतिम शांति, प्रसन्नता और अनुभूति तक ले जाएगा। लेकिन बहुत लोग तो सिर्फ यही कर रहे हैं, अपने मन से पढ़ते हैं, सोचते हैं, विचार–विमर्श करते हैं, बोलते हैं, शिक्षा लेते हैं और गुरूओं के पीछे भागते हैं।

वे मन की ऊपरी सतह पर तेज़ी से दौड़ लगाते रहते हैं और यह नहीं पहचानते कि इस मन का, मन के पार जाने में प्रयोग नहीं हो सकता क्योंकि जिस संसार की वे खोज करना चाहते हैं या जिसके आर–पार देखना चाहते हैं, उस संसार को जन्म भी तो इसी मन ने ही दिया है।

वे अभ्यास साधना या आत्म–निरीक्षण की बातें नहीं करते। गहराईयों में जाना तो उनके लिए कोई मायने ही नहीं रखता, क्योंकि उन्हें तो सिर्फ मन के बनाए हुए जागृत संसार की ही जानकारी है। गहराईयों या तह तक पहुँचने के लिए इस नाम–रूप जगत से आगे बढ़ने के लिए उन्हें मन का प्रयोग करना बिल्कुल बंद करना होगा, लेकिन वह ऐसा कभी नहीं करेंगे।

इस वजह से हमारे ये संवाद बहुत ही महत्वपूर्ण हैं क्योंकि तुम अपनी आत्म–निरीक्षण की संपूर्ण योग्यता से, अपने गहन अनुभवों की जानकारी देते हो और यह दर्शाते हो कि अधिकतर आध्यात्मिक प्रवचन तो सिर्फ मन और उसके भ्रमों के बारे में होते हैं न कि उसके बारे में जो मन और चेतना से भी पहले के हैं, क्योंकि जिसको वे चेतना कहते हैं वह मन का एक मनोरंजक, मायावी काल्पनिक खेल है, जिसे मन ने ही जन्म दिया है।

हमारे संवाद उन योगियों के लिए हैं जिनमें अस्तित्व और अपने सच्चे स्वरूप को जानने की प्यास है और जो सिद्धांत और धारणाओं से कोई वास्ता नहीं रखते बल्कि अपना अमूल्य समय आत्मिक खोज में लगाते हैं। ये साहसी योगी होते हैं। वे गुरूओ, किताबों, धारणाओं और थ्सद्धांत का त्याग कर देते हैं और स्वयं ही अपनी आंतरिक खोज पर निकल पड़ते है। ये गुण बहुत कम योगिओं में नज़र आते हैं।

रॉबर्ट ने कहा था कि वह सिर्फ दस ऐसे शिष्यों से संतुष्ट रहेंगे। मेरे हिसाब से तो उनके पास ऐसे सिर्फ दो या तीन ही शिष्य थे।

इसलिए ये संवाद उन योगिओं के लिए महत्वपूर्ण हैं जो पहले से साधना करते थे, पर अब एक गतिरोध में फंस गए हैं। वे अपने साधना के केंद्र को बदलने की क्षमता रखते हैं, जैसे – ज़ैन शून्यता से या क्रियावादी अपना ध्यान तीसरे नेत्र पर केंद्रित करते हैं और "मैं हूँ" एहसास पर ध्यान लगाकर तीव्र प्रगति कर लेते हैं।

राजीवः

मैं पूर्णतः आपकी भावनाओं को समझ सकता हूँ। मैं स्वयं ही बहुत परेशान और निराश हो जाता था, जब मैं क्रिया में साधकों की मनोवृत्ति देखता था। बस ऐसा लगता था कि इनको किसी चीज़ की परवाह नही है। साधना के नतीज़ों से उनका कोई लेना–देना नहीं था। इसके बावजूद भी वे वहीं डटे रहते थे और उन्हें यह विश्वास था कि उन्हें सब मालूम है और कुछ कम आनंद और हर्ष का अनुभव ही उनके लिए पर्याप्त था। हर्ष नही होता तो, वे कहते थे कि अभी उनका समय नहीं आया है,उसमें कुछ भी सत्य नहीं था।

अब तो मुझे नव अद्वैतवादियों के बारे में सोचकर बहुत दुःख होता है। अद्वैत के नाम पर जो कुछ हो रहा है, उस पर मैं विश्वास नहीं कर सकता हूँ।

मैं सोचा करता था कि माँ चेतना इस प्रकार के खेल क्यों खेल रही हैं?

लेकिन गुरूजी, यह सब कुछ बदल जाएगा। मैं आपके दुःख को महसूस करता हूँ। शायद चेतना की अपनी ही कार्यसारिका है और समय के साथ ही सब कुछ पता चलेगा।

उन्हें खेलने दीजिए। किसी दिन यह सच्ची शिक्षा, सच्चे और ईमानदार साधकों तक पहुँच जाएगी और हम सब परमानंद के सागर की गहराइयों में गोते खाएँगे। उस दिन मैं अपने जीवन को जीने के योग्य पाऊँगा। यह अब होना शुरु हो गया है, है न, गुरूजी?

कितने ही सच्चे गंभीर शिष्य इसके बारे में जानना चाहते हैं। यह तो होकर ही रहेगा, गुरूजी। आपका प्रेम उन्हें निराश नहीं करेगा और उन्हें चेतना के उस पार ले जाएगा।

सच्चे शिष्यों के लिए आपका प्रेम सदा उनका मार्गदर्शन करेगा।

एडजीः

धन्यवाद, राजीव। मुझे दर्द नहीं होता, सिर्फ निराशा होती है।

मुझे अमरिकी राजनीति के बारे में भी ऐसा ही लगता है। मैं उदार नीतियों में विश्वास रखता हूँ और मेरा मानना है कि अमरिकी सरकार को और मदद करनी चाहिए, युद्ध और मांसाहार बंद करना चाहिए पर अभी तक यह देश गरीब और पशु विरोधी व संकुचित मानसिकता वाला है।

यह एक ऐसी निराशा है जो हमेशा जारी ही रही है। मुझे यह एक बहुत बड़ा अन्याय लगता है। लेकिन यह ऐसा ही है, यह अनुभूति बढ़ती ही जायेगी पर इसमें बदलाव लाना मेरे बस में नहीं हैं और न मैं ऐसा कर ही सकता हूँ।

मेरा सुख तो इसमें हैं कि मैं तुम्हें ऊँचाईयों को पाते हुए और परिवर्तित होते हुए देखूँ। और यह काम अभी तक खत्म नहीं हुआ हैं – तुम्हारे आगे अभी बहुत कुछ है। तुम और आगे देखोगे कि तुम्हारी सोच में और परिवर्तन आएंगे, तुम और भी प्रगति करोगे।

राजीवः

गुरूजी, यहाँ पर मैं कुछ साधकों से बात कर रहा था, जो कई–कई सालों से क्रिया और अद्वैत का अभ्यास कर रहे हैं, लेकिन उन्हें कोई ठोस परिणाम नहीं मिल पाया है।

मुझे यह सुनकर हँसी आई और बहुत आश्चर्य भी हुआ कि वे लोग मेरे इस जीवन की मेहनत और परिणामों को पिछले जन्म की कोशिश से जोड़ रहे हैं। और सारे के सारे यह सोचते हैं कि उन्हें भी इस परमानंद की प्राप्ति तब होगी, जब उनका समय ठीक होगा। मैं उन्हें दोष नहीं देता क्योंकि भारतियों का कर्म और भाग्य में अटूट विश्वास है। यह हमारी संस्कृति, धर्म और सभ्यता का मूलाधार हैं। क्योंकि हम कर्म करने में ज़्यादा विश्वास रखते हैं और फल की कामना नहीं करते। बहुत लोगों को लगता है कि फल की कामना करना ही गलत है।

मैं उनकी बातों से कुछ हद तक सहमत हूँ और उनसे सहानुभूति रखता हूँ। साधना अभ्यास में किसी चीज़ को पाने की लालसा रखना एक गलत बात है। लेकिन साधक को हमेशा यह सोचना चाहिए कि शिक्षा और अभ्यास से सही परिणाम प्राप्त हो रहा है या नहीं। क्योंकि सही अभ्यास, सही शिक्षा और मार्गदर्शन के साथ हमेशा इच्छित परिणाम ही देगा।

दूसरी तरफ मैंने पाया है कि बहुत से साधक, बहुत से पुराने गुरूओं की अलग–अलग किताबे पढ़ते रहते हैं। वे सिर्फ बहुत सारा ज्ञान और धारणाएँ बटोर पाते हैं। वे वास्तव में तो अपनी ही प्रगति में एक बहुत बड़ा रोड़ा अटका देते हैं।

मेरे लिए अभ्यास का मतलब है – हर क्षण सजग रहना, अपने अंदर जो भी हो रहा है उसका गहराई से आत्म–निरीक्षण करना और एक केंद्रित साधना का प्रयास करते रहना। एक का दूसरे के बिना होना असंभव है और अधूरा लगता है।

दोनों ही समान रूप से ज़रूरी हैं। इन सबसे अधिक महत्वपूर्ण है एक जीवित गुरू का पग–पग पर क्रमानुसार मार्गदर्शन। कई बार लोग इस भ्रम में रहते है कि वह अनंत तक पहुँचने वाले है जबकि वास्तविकता में, वह अनंत से बहुत दूर जा रहे होते हैं। इसलिए हर क्रम पर एक जीवित गुरू की उपस्थिति बहुत ही ज़रूरी है। किताबें या अंधी भावनात्मक भक्ति, किसी जीवित गुरू के मार्गदर्शन और उपस्थिति का स्थान नहीं ले सकती।

अगर आप और आपका आशीर्वाद नहीं होता गुरूजी, तो मैं एकात्मता अवस्था (चेतना के खेल) में ही फंसा रहता और भ्रमित होकर यही सोचता कि यही अनंत परमानंद है। अब मुझे पता है कि यह तो सिर्फ एक छिपी हुई बड़ी समस्या का दिखता हुआ अंश मात्र था।

एक पहलू व्यवहार और भावनाओं से जूझना है और यह जानना की 'मैं' 'मैं–विचार' से अलग है। और यह कि एकात्मता को पाया जा सकता है। दूसरा पहलू यह समझना है कि वही 'मैं' एकात्मता नहीं है और चेतना के दायरे से बहुत आगे है। यह दूसरा पहलू तब ही संभव होगा जब साधक अपनी साधना में मन और उसकी हलचल को शांत कर पाएगा और अपनी आंतरिक गहराई में जाकर भिन्न अवस्थाओं का अनुभव करेगा।

बहुत से नव अद्वैत थोड़े से परमानंद और हर्ष से खुश हो जाते हैं फिर जब वह जागरूकता का अनुभव करते हैं तो 'वर्तमान' में पहुँचकर 'मैं–विचार' को पार कर लेते हैं, जिससे उन्हें एकात्मता का एहसास होता है। वह सच्चे परमानंद और हर्ष के मोती इसलिए नहीं ढूँढ़ पाते क्योंकि साधना के प्रयत्न कम होने पर वह आंतरिक गहराईयों को नहीं छू पातें। यह 'मैं हूँ' अवस्था तो सदा परिवर्तित होती रहती हैं, जिसके छुप जाने से हमारा मोहभंग होता है और हम घनी निराशा के बादलों से घिर जाते हैं। नव अद्वैतों को यह एहसास होना चाहिए कि थोड़ा–सा और प्रयत्न करके वह परमानंद को पा सकते हैं, जहाँ पर चेतना का सदैव बदलता रूप, साधक की अवस्था पर कोई असर नहीं कर सकता। उस परमानंद विश्राम और परम शांति कि अवस्था को फिर कोई बाहरी वस्तु नहीं हिला सकती।

वह योगी बहुत परिश्रम करते हैं और हमेशा कुछ 'पाने' की या खोजने की होड़ में लगे रहते हैं। वह कठिन साधानाभ्यास तो करते हैं लेकिन 'मैं हूँ' एहसास पर ध्यान नहीं केंद्रित करते। वह अपना मूल्यवान समय शून्यता या तीसरे नेत्र के चमत्कारों का अनुभव करने में ही लगा देते हैं। आप कभी किसी साधारण योगी को नही ढूँढ़ पाओगे। वह हमेशा अलग होंगे और सामान्य जीवन से अपने आपका बड़ा चढ़ाकर दर्शाएँगे। बहुत से साधक किसी मठ से नाता रखते हैं या उन्हें यह विद्या अपने पूर्वजों से प्राप्त होती है। इसलिए वह हर विषय के बारे में एक व्यक्तिगत विचार या धारणा रखते हैं जो वह अपने चेलों पर थोपते हैं यहाँ तक कि वह अपनी व्यक्तिगत साधना के अनुभव भी अपने चेलों पर थोपते हैं। जब वह साधना में बैठते हैं तो वह अपनी संस्कृति और वंशावली को नहीं भूल पाते।

फिर यह क्रियाओं को खत्म करने की होड़ भी होती है। कौन–सी क्रिया पहले होगी, कौन–सी बाद में, एक ही बैठक में कितनी क्रियाएँ होंगी इत्यादि इस साधना को एक यांत्रिक रूप दे देता है।

वह अपने ऊपर केंद्रित होने के बजाय साधना के किसी खास प्रयोग पर अपनी ऊर्जा लगाते हैं। मैंने देखा कि कई तो मात्र, गिनती से प्रभावित होकर रास्ते 'क्रिया पर केंद्रित होते हैं न कि 'आत्म' या लक्ष्य पर। यह ज़्यादातर सिर्फ खोजना है, पाना है, या 'बिन्दु' में घुस जाना है। साधना के बारे में यह सब विचार बहुत ही व्याप्त और सामान्य हैं।

इन सब इच्छाओं के बीच 'मैं हूँ' अवस्था तो खो सी जाती है। मैंने उनमें व्यवहार से जुड़ी हुई बहुत सारी समस्याएँ देखी जैसे – गुस्सा और हताशा। कठिन कुंभक और गहन अभ्यास से कुछ साधकों में मैंने बहुत सी शारीरिक और मानसिक समस्याएँ देखी जो उन्हें रोज अभ्यास नहीं करने देती।

गुरूजी, ये कुछ कारण हैं जिनसे साधक गहन एकात्मता और परमानंद का सुख नहीं उठा पाते। आपने अपनी सीख इतनी सरल बना दी है कि वह बिल्कुल आसानी से समझी और सीखी जा सकती है। इससे साधक अपनी प्रगति को भी समझ सकता है। जैसा आपने कहा है, आत्मा में रहना और मैं कौन हूँ जानना इतना महत्वपूर्ण नहीं है जितना 'मैं–विचार' की साधना करके उस स्तर को बनाए रखना। इस पथ पर चलने वालों के लिए लक्ष्य दूर नहीं है।

एडजी:

यह एक बहुत ही बढ़िया विश्लेषण और सारांश है।

रॉबर्ट, महर्षि रमण और निसर्गदत्त सब ने यही कहा था, लेकिन हर साधक को इसे सूक्ष्म रूप से सुधारना चाहिए। एक गुरू सही मायने में अंधेरी राहों से शिष्य को को बचाता है।

सिद्धांत का मार्गदर्शन महत्वपूर्ण है। साधना के प्रयत्नों से ऊँचाईयों को छू लेने वाला मन भी महत्वपूर्ण है। इसका मूलाधार सही साधना का अभ्यास है जिसे हम आत्म–निरीक्षण भी कहते है।

तुम्हें यह समझना होगा कि आत्म–निरीक्षण का मतलब है आत्मा की देखरेख करना, अपनी आत्मा का एहसास करना। यह सिर्फ उस पर ध्यान लगाकर, खोज, छानबीन कर, उसमें डूबकर और उसके साथ खेलकर हो सकता है। इससे आत्मा का एहसास, बाकी सब चीज़ों से अलग हो जाता है। फिर तुम उसमें बसकर उसमें विश्राम कर सकते हो।

कई बार आत्म–निरीक्षण के तरीके में एक छोटा–सा बदलाव लाने के बाद उसमें एक जमीन–आसमान का फर्क आ जाता है। यह आंतरिक चमत्कार बहुत ही ज़टिल और परिवर्तनशील होते हैं। इससे उन्हें अलग करके अपरिवर्तनीय पर ध्यान लगाना मुश्किल हो जाता है।

फिर स्वयंरचित बदलाव होते रहते हैं। तुम समाधि लेकर संसार या चेतना से एक हो जाते हो। तुम्हें हर चीज़ में चेतना दिखने लगती है। शरीर विचार यह सब चेतना है। फिर तुम यह देखते हो कि आत्मियता और चेतना आते हैं और चले जाते हैं लेकिन तुम वहीं के वहीं रहते हो और यह जान लेते हो कि तुम इन दोनों से परे हो। यह ही सही प्रगति है।

लेकिन यह एक स्वयंरचित प्रक्रिया है क्योंकि आत्म–निरीक्षण का अभ्यास क्रिया और योग जैसा बाहरी अभ्यास नहीं हैं। क्योंकि आत्मा तो स्वाभाविक रूप से जागरूक है। यह तो मन ही है जो एक विकार है, जो चेतना के कई विभाग करके इतने सारे आंतरिक और बाहरी संसार बना देता है।

आत्मा में बस जाना एक स्वाभाविक अवस्था है। यह योग करने जैसा नहीं है, न ही कोई किताब पढ़ने जैसा या मनोचिकित्सा जैसा। यह तो बस होना है।

राजीव:

गुरूजी, जब से मैंने जाना है कि चेतना का खेल चलता रहता है और वह ज़्यादा ध्यान देने लायक नहीं है तब से मैं किसी न किसी रूप में, ऑफीस के या व्यक्तिगत मामलों में घसीट लिया जाता हूँ। यह आश्चर्यजनक बात है क्योंकि मैं इसे अपनी इच्छाशक्ति से नहीं लाया हूँ। किसी आम आदमी को ऐसी घटनाएँ तोड़ सकती हैं, पहले मुझे भी असर करती थी लेकिन अब मुझे लगता है कि यह बात बहुत छोटी–सी है। आंतरिक परमानंद को कोई नहीं छू सकता। बाहर कुछ भी क्यों न हो जाए औपचारिक साधना पर बाहरी घटनाएं बहुत असर तो करती है लेकिन इस समझ ने मुझे एक गहरी स्थिरता दी है। अब चेतना और बाहरी घटनाएं मुझे नहीं हिला सकती। मेरा संबंध परमानंद से अब होता जा रहा है जबकि उसका सुख मेरे रोम–रोम में बस जाता है। अब मेरा ध्यान कहीं और नहीं भटक सकता न ही किसी चीज़ का असर मुझ पर होता है। कुछ भी सच नहीं है और सब कुछ गुज़र जाएगा। पूरा दिन यही सब मैं महसूस करता रहता हूँ। यह एक लगातार गूँजने वाले मंत्र के समान है।

यहाँ पर खुशी है, परमानंद है, शांति है, हलचल है, शोर है, विचार हैं लेकिन इन सब अनुभवों का लेनदार कोई नही है। अपनी जिंदगी में पहली बार मैं यह कह सकता हूँ कि इनमें से कोई भी चीज़ मेरे द्वारा नहीं हुई हैं और न ही वह मेरी हैं। यह एक मुक्ति दिलाने वाला एहसास है।

एडजीः

यह महत्वपूर्ण हैं। औपचारिक साधना का कुछ और समय तक अभ्यास करो। तुम अपनी अवस्था खो सकते हो और फिर तुम्हें उसे वापस लाने में बहुत परेशानी उठानी पड़ेगी। अपने मन को तुम्हें पीछे ले लाने की अनुमति मत दो।

मुझे तुम्हारी संवेदनशीलता का अनुमान है। यह तुम्हारा दोष नहीं है। यह एक बहुत बड़ी चीज़ है। तुम एक बहुत दयालु इंसान हो। तुम भविष्य की अद्वैत संस्कृति के एक गुरू ही नहीं बल्कि एक उच्च श्रेणी के संत हो। यह एक बहुत ही अनोखा और निराला संयोजन है। इसलिए चेतना तुम से प्रेम करती है। चेतना तुम्हें परेशान नहीं कर रही बल्कि तुम्हारा मन मरने से इंकार कर रहा है। तुम उससे गुज़र चुके हो फिर भी तुम वहीं अटके हुए हो।

इस अनोखे और निराले संयोजन को बनाए रखने के लिए ही तुम्हे अभी अपनी सुरक्षा करनी होगी।

तुम इन संवादों को अपना समय लेकर सुधारो। इस समय संवादों को सुधारने से ज़्यादा महत्वपूर्ण है कि तुम शांतिपूर्ण वापसी में समय बिताओ।

एक बार जब यह छप जाएँ तब मैं कौशियसनैस एण्ड द अैबसोलयूट (Consciousness and the Absolute), निसर्गदत्त के बारे में जोन डन द्वारा लिखित पुस्तक की व्याख्या करने में लग जाऊँगा। जीन मेरी दूसरी गुरू थी। वह उन दो चुने हुए शिष्यों में से एक थी, जिसे निसर्गदत्त जी ने शिक्षा देने की अनुमति दी थी और पंद्रल साल पहले भी उन्होंने मुझे यही कहा था कि मेरी समझ अब काफी है आगे बढ़ने के लिए। उस मायने से तुम निसर्गदत्त के पोते हो और महर्षि रमण के आध्यात्मिक पड़ पोते हो।

रमण की शिक्षाओं की बारीकियों को लेकर तुम्हें भविष्य में बहुत कुछ खोजना है।

मेरा ऐसा कहना तुम्हारे लिए खतरनाक भी हो सकता हैं क्योंकि यह तुम्हारे अंदर अभिमान पैदा कर सकता है, सावधान रहो।

मैं इस बात की पुष्टि करता हूँ कि तुम्हें वह सब मिले जो मुझसे संभव है।

राजीवः

हाँ। मैं भी उसका अभी से इंतजार कर रहा हूँ। जीन ने आपके बारे में जो कुछ भी कहा वह मैंने किसी वैबसाईट पर भी पढ़ा था।

एडजी, गुरू के बगैर कुछ भी प्राप्त नहीं हो सकता।

आपके रूप में सत्गुरू को पाकर मैं भगवान को धन्यवाद करता हूँ। मैं आपके बिना राह से भटका हुआ एक यात्री जैसा हूँ, गुरूजी।

एडजीः

अगर मैं न भी होता तब भी तुम्हारा मार्गदर्शन होता, राजीव। चेतना तुमसे बहुत प्रेम करती है। तुम अपने सबसे गहरे स्रोत से जुड़ गए हो जो तुम्हें अंदर की ओर खींचता है इसलिए चेतना का आशीर्वाद तुम पर सदैव बना रहता है।

राजीव :
गुरूजी, इससे पहले कि मैं संवाद पढ़ने में लीन हो जाऊँ, मुझे आपसे कुछ पिछले ध्यान सत्रों और जागृत अवस्था के बारे में कुछ बातें करनी हैं।

आज ध्यान के समय मैंने अपने आपको दूर रखते हुए चेतना के जोरदार प्रयत्न को देखा लेकिन वहाँ मैं बिल्कुल नहीं था। मैं चेतना को जो वह करना चाहती है वह करने की अनुमति दे रहा था। फिर मुझे एहसास हुआ कि इस जिंदगी में जो कुछ भी हो रहा है उस पर मेरा कोई वश नहीं है और उस ही तरह इस सत्र में जो कुछ भी हो रहा है वह मेरे वश के बाहर है। चेतना स्वयं में बुद्धिमान है और यह सब चेतना का खेल है। अब वह बुद्धिमत्ता वैसी नहीं है जैसी मैं समझता हूँ या फिर उस तरह जिस तरह मैं अपना सत्र या जिंदगी चलाना चाहता हूँ। मैंने हर इच्छा छोड़ दी है और निश्चय कर लिया कि मैं सिर्फ 'मैं' रहूँगा। शायद मैंने जो सत्र में होने वाला है उस पर ध्यान दिया भी होगा और न भी दिया होगा।

मुझे याद है, जैसे ही मेरा सत्र खत्म हुआ कि वह पूरी तरह बिखरा हुआ था। इसका कोई मतलब या कोई दिशा नहीं थी लेकिन यह वैसे ही था जो चेतना ने चुना था। मैं इसमें बिल्कुल शामिल नहीं था। मैं सिर्फ विश्राम कर रहा था और उसे वह सब करने दे रहा था जो वह चाहती थी। चेतना के तरीके बिल्कुल बेमतलब और दिशाहीन होते हैं। यह एक पूर्ण रूप परेशानी वाला माहौल था। मैं किसी भी तरह का नियंत्रण नहीं करता क्योंकि मैं अपनी जगह पर स्थापित हूँ। मेरी कोई इच्छा नहीं है। कई बार मुझे कुछ न करने कि इच्छा, एक मूर्खता लगी। मैं विश्राम करने में बहुत व्यस्त था और मैंने सोचा यह जो कुछ करना चाहती है वह मैं उसे करने दूँ।

सत्र समाप्त होने के बाद मुझे याद है कि दो घण्टे दो मिनट जैसे लगे। यह इच्छा के बिना होना भी एक सबसे स्वाभाविक अवस्था थी। कुछ डूबने जैसा अनुभव हुआ, विशाल खाली शून्यता, एक गहरी शांति, आगे फैली हुई शून्यता में हलचल, यह सब आते–जाते रहते। मुझे यह नहीं पता कि यह कब तक चलता रहा क्योंकि मेरा मन बंद–सा पड़ गया था जैसा कुछ दवा खाकर होता है, एक गहरी निद्रा से भरी शून्यता में चला गया।

वह डूबना अपने आप हुआ। मुझे एक तेज़ रफ्तार ने मानो निगल लिया हो। एक तीव्र ठहराव और खाली शून्यता का अनुभव हुआ जो अनुभवों के दायरे से परे था।

ऐसा लगा कि इतने शोर, हलचल और परेशानी के बाद वह शरीर–मन–चेतना की मशीन एकदम से बंद पड़ गई।

यह सब तुम्हारे ऊपर थोपे हुए लगेंगे। तुम्हें यह एहसास होगा कि उस दुश्मन से लड़ने का कोई मतलब नहीं है जो अस्तित्वहीन हो। यह वैसा ही है जैसा अंधेरी कोठरी में भूत होने का भ्रम होता है। लेकिन असलियत में वह होते ही नहीं है। तुम उनसे लड़ने नहीं लगते या फिर उनके डर से बत्तियाँ खुली नहीं छोड़ देते। जैसे ही तुम अपने कार्य में डूब जाते हो वैसे ही उनके बारे में भूल जाते हो। वह अपने आप अपनी मौत मर जाते हैं। इसी तरह हर विचार और चेतना के खेल की एक नियमित योजना है, क्षणिक होते हैं और आते–जाते रहते हैं, उन्हें रहने दो। यह पहले से ध्वनिमुद्रित (रिकार्डेड) टेप जैसे हैं जो बजकर अपने आप रूक जाते हैं। वह चेतना की इच्छाशक्ति है जो तुम्हारे मन और शरीर को इसमें शामिल करने का प्रयत्न करती है, यह तुम्हारी इच्छाशक्ति से नहीं होता। मैंने यह जाना कि मैं इच्छाशक्ति और प्रयत्न से बिल्कुल परे हूँ।

वह तो चेतना है जो घटनाओं और पात्रों से खेल खेलती है, यह मेरे कारण या इच्छाशक्ति से नहीं होता। मेरा इसमें कोई हाथ नहीं हैं। चेतना क्या करती है, उससे मुझे कोई फ़र्क नहीं पड़ता क्योंकि यह मुझसे जुड़ा हुआ नहीं है। यह सिर्फ ऐसा प्रतीत होता है। चेतना का कोई व्यक्तिगत लक्ष्य नहीं हाता, वह तो बस जो चाहती है, वह करती है।

इसमें बहुत सारी ऐसी चीज़े हैं जिनका कोई मतलब नहीं होता। अगर इसमें हम चेतना के ऐसे चलने में कोई मतलब ढूँढेंगे तो हम उसके चलन को अशांत कर देंगे और इस अशांति से एक नई सच्चाई को जन्म देंगे जो वास्तव में मूल रूप से असत्य है। यह सब शायद इस संसार का सबसे बड़ा धोखा होगा। और इसमें शामिल होकर हम इस पूर्ण असत्य को सत्य मान लेते है। इच्छाशक्ति का प्रयोग करना पूर्ण असत्य को भी सत्य का रूप दे देता है। चेतना स्वयं ही अपना कार्य करती रहती है और इसमें हमारा कोई काम या योगदान नहीं है।

हमारे पास जन्म देने का कुछ नहीं है, न ही कुछ खोजने को, न ही नष्ट करने को। हमें अपने आसपास की चीज़ों, विचारों या घटनाओं से कोई लेना–देना नहीं है। चेतना, मन और शरीर की बुद्धिमत्ता के द्वारा काम करती है, हमें उस पर ध्यान देने की आवश्यकता नहीं है और न ही उसे देखने की। अगर हम सो जाए और कुछ भी न करें तब भी चेतना हमारे मन और शरीर से काम करवा लेगी। एक तरह से यूँ कह सकते हैं कि हम मर चुके हैं। मेरे मांगे बगैर ही परमानंद हर्ष और शांति सब जगह व्याप्त है। लेकिन मैं कुछ न मांगकर भी किसी चीज़ का स्रोत हो सकता हूँ या नहीं भी हो सकता हूँ। मैंने इस सबको या बनाया होगा या न भी

बनाया होगा। इस चेतना के खेल के आर–पार देखने के बाद मैं सिर्फ जी रहा हूँ, अस्तित्वहीन, बिना किसी इच्छा शक्ति के। मैं सिर्फ विश्राम कर रहा हूँ। अब यहाँ जो कुछ भी है सिर्फ शांति है। और जो मैं कर रहा हूँ वह विश्राम। बस विश्राम, गुरूजी। मैं पूरे समय बस विश्राम ही कर रहा हूँ।

यह विश्राम, साधना का एक अनुभव है जब चेतना की यंत्ररचना पूर्ण रूप से टूट जाती है और धीमी होकर पूरी तरह रूक जाती है। और ऐसा होने से पहले वह हमें उसमें शामिल करना चाहती है। जब आप बिना इच्छाशक्ति के चेतना को अपनी बुद्धिमत्ता से चलने की पूरी अनुमति दे देते हो तब वह रूक जाती है। रूक जाने के बाद वहाँ सिर्फ एक मीठी शून्यता और खालीपन बच जाता है। फिर आपकी सबसे भव्य अवस्था का अनुभव होता है। यह भव्य अवस्था है एक स्वाभाविक शांति अवस्था।

गुरूजी, आपने जो स्वतंत्रता की उड़ान मुझे दी है वह मैं शब्दों में बयान नहीं कर सकता। आपने मुझे जो दिया है उसके सामने सबकुछ फीका पड़ जाता है। मैं आपको नमन करता हूँ।

एडजीः

हाँ राजीव अब तुम पहुँच गये।

राजीवः

उस बार गुरूजी, मुझे किसी तरह पता चल गया था। यह एक परमपूर्ण एहसास है हर चीज़ से स्वतंत्रता पाने का, विचार, चेतना, इच्छाशक्ति और प्रयत्न से स्वतंत्रता। कोई और काम नही है बस विश्राम ही विश्राम है और जो भी हो रहा है उससे मेरा कोई लेना–देना नही है।

गुरूजी, आपकी करुणा से ही यह सब हो पाया। काश! यह सब समझ पाते कि सत्गुरू के सिर्फ शब्द ही काफी हैं – और किसी चीज़ की जरूरत नहीं है। समर्पण का मतलब अंधा विश्वास नही होता, इसका मतलब होता है कि सत्गुरू के सच्चे शब्दों पर ध्यान देकर बाकी सबकुछ छोड़ देना जहाँ पर उनके शब्दों के सिवाय कोई भी चीज़ मायने नहीं रखती।

गुरूजी, मैं आपको शत–शत प्रणाम करता हूँ।

राजीवः (कुछ दिन बाद)

गुरूजी, मैं अभी–अभी ध्यान से निकला हूँ। फिर से दो घण्टे कैसे बीत गए पता ही नहीं चला। यहाँ तक की सुबह दूधवाले की घर के दरवाजे पर पहली दस्तक भी सुनाई नहीं दी।

अनुभवों के बारे में लिखने को ज़्यादा कुछ नहीं है। क्योंकि ध्यान के समय उसकी जानकारी रखने की भावना ही प्रबल थी।

शायद मैं अचेतन हो गया था और गहरी नींद में चला गया इसलिए दूधवाले की घण्टी सुनाई नहीं दी। जो अचंभित करने वाली बात थी वह यह थी कि ध्यान के समय मुझे समय की और हर चीज़ की पूरी जानकारी थी। बीच में मैं एस्ट्रल सपनों में भी खोया था लेकिन यह बिल्कुल ही ऊपरी स्तर पर हो रहा था और मैंने उस पर ज़्यादा ध्यान नहीं दिया। 'मैं' पार्श्वभूमि में सदा ही विश्राम करता रहता हूँ।

मैंने पार्श्वभूमि में 'मैं' की अनुभूति करते हुए कभी भरपूर परमानंद को महसूस किया था फिर एक ठंडी ऊर्जा की लहर मेरे पूरे अस्तित्व में दौड़ पड़ती। बस, यही अनुभव होते रहे।

पूर्णता से बताऊँ तो मुझे कुछ नहीं हो रहा था, जो कुछ भी था या तो ऊपरी सतह पर था या फिर मेरे साथ नहीं हो रहा था। वह शीतल लहर और परमानंद मेरी स्वाभाविक विश्राम की अवस्था में हो रहे थे और मैं पूरी जागरूकता से इन्हें देख रहा था। यहाँ पर समय मुझे छू भी नहीं सकता था। यह भावना सबसे प्रबल थी।

एडजीः

यह तुम्हारी सच्ची अवस्था है। तुम धीरे–धीरे कुछ भी नहीं बन रहे हो। यह विश्राम की अवस्था को जागृत निद्रा कहते है, तुरिया। राजीव समय के साथ इसकी मात्रा भी बढ़ जाएगी। तुम अपने सच्चे स्वरूप को

धीरे–धीरे पहचान रहे हो। यह सिर्फ उसकी शुरूवात है, अंत नहीं। लेकिन इस क्रिया के समाप्त होने में अभी समय है।

राजीवः

मैंने सिर्फ एक ही काम किया है और वह है कि आपकी शिक्षा पर मैंने पूरा ध्यान दिया है और कभी भी मार्ग से इधर–उधर नहीं हुआ है। अगर कोई आपको पूरा आत्मसमर्पण कर दें तो, आपके शब्दों में एक बहुत जबरदस्त ऊर्जा है जो सही मार्ग दिखाती है। इसमें मुझे कभी संदेह नहीं था। मैं आपकी अनुकंपा से ही यहाँ तक पहुँचा हूँ।

गुरूजी, मेरी अब जिंदगी में आपके दर्शन के सिवाय और कोई अभिलाषा नहीं है।

मुझे पता नहीं कि आप भारत आ सकते हैं या नहीं। मेरे लिए आपका यहाँ आना एक बहुत ही खुशी की बात होगी।

अन्यथा शायद मुझे ही आप तक पहुँचने का मार्ग मिल जाये।

आपका सेवक

राजीव

(अगले दिन)

राजीवः

मैंने आज ध्यान के समय परमानंद अनुभव किया। ऐसा परमानंद जो शब्दों में बयान नहीं किया जा सकता। ऐसा लगा जैसे मेरे रोयें–रोयें से आनंद बह रहा हो। इस संसार में ऐसा कुछ नहीं है जो इस आनंद को बांध कर रख सकता है। इस अनुभव ने मेरे हर बीते हुए अनुभव को फीका कर दिया। एक इंसान के समस्त अनुभवों और कल्पना से बहुत परे है, यह अनुभव। इस अनुभव का कोई भी मुकाबला नहीं है।

कुछ समय तक खालीपन था जब सबकुछ थम गया था। कल के ध्यान में जैसे फिर परमानंद का फव्वारा छूटा। मुझे यह बिल्कुल पता नहीं है कि यह मैं अपनी स्मरण शक्ति से कह रहा हूँ या यह मेरा स्वाभाविक रूप है। यह इसलिए हो रहा है क्योंकि कोई दिशा दिखाने वाली ऊंगली नहीं है और न ही कोई हर पल तोल–मोल करने वाला मन है। हालांकि जागरूकता थी फिर भी पता नहीं कि इतना समय कैसे बीत गया।

इस बार पीछे की तरफ डूबना बहुत तीव्र था और मैं सूक्ष्म में पहुँच गया। मैंने अपने स्थूल और सूक्ष्म शरीर दोनों को एक साथ महसूस किया। मैं इन दोनों शरीरों में एक साथ रह सकता था। उस सूक्ष्म क्षेत्र में मेरा मन पूरी तरह मेरी सहायता कर रहा था लेकिन यह अनुभवातीत आनंद ढूँढ़ा नहीं जा सकता। शायद मेरी समयहीन अवस्था की वजह से यह परमसुख प्राप्त हुआ।

ध्यान की शांतिपूर्ण और रूकी हुई अवस्था, जैसे मुझे कह रही थी, "मैं शब्दहीन और प्रयत्नहीन हूँ, यहाँ तुम शरण ले लो।" यहाँ पर कोई देखने वाला या दृश्य नही है, कोई साक्षी नही है और न ही कोई साक्ष्य कर रहा है, कोई उद्देश्य नही है, कोई मन नही, कोई समय नहीं, बस एक विश्रामपूर्ण अवस्था है जो सबसे परे है।

आह! गुरूजी। अब कहने को कुछ भी नही रहा है। मैं सारे गुरूओं के गुरू अपने सत्गुरू एडजी को प्रणाम करता हूँ जो यह सब मुमकिन करा रहे है।

राजीवः(दो हफ्ते बाद, एड की ई–मेल के जवाब में जो पूछ रहे थे कि राजीव कैसे हैं)

गुरूजी, अब साधना बिल्कुल भी जटिल और थकाने वाली नहीं रही, अब वह बहुत ही सुंदर बन गई है। यह साधना का समय मेरी जिंदगी का सबसे महत्वपूर्ण और सुंदर समय है। रोज़ाना दो बार साधना अपने आप हो जाती है। अब कुछ करने को बाकी नहीं रहा। साधना का शब्दों में वर्णन करते–करते अब मेरे पास शब्दों की कमी हो रही हैं। मैं साधना में तल्लीन हो गया हूँ, गुरूजी। अब कुछ कहने को नहीं रहा, गुरूजी।

वह विश्राम की अवस्था अनुभवों की इच्छा के ऊपर हावी हो रही है। सुबह से ध्यान के दौरान पिछले दो दिनों से कई बार मैं एक सफेद रोशनी से पूरी तरह ढक जाता हूँ। यह अति मनमोहक और सुंदर है। लेकिन मैं जो हूँ वह इन सब घटनाओं से भी परे है। डूबना तब होता है जब ध्यान की तीव्रता से विचार पकड़े जाते हैं। मैं साधना के समय कई खेल खेलने में व्यस्त रहता हूँ इसलिए इतनी अच्छी चीज़ है, यह साधना। जब कुछ नहीं होता तब 'मैं' विश्राम करता हूँ। अब और कुछ महत्वपूर्ण नहीं है। विचार, अनुभव या फिर इन दोनों की जरूरत नहीं लगती। सिर्फ मैं अपनी विश्राम अवस्था में हूँ, निद्रा में हूँ, लेकिन फिर भी जागरूक जीव हूँ। समय अपने आप बीतता जाता है। अनुभव करने की जरूरत तो अब मूर्खता लगती है, क्योंकि इससे अच्छा तो अपनी दृष्टि नीचे करके, मैं विश्राम करूँ।

ऐसा समय भी आता है जब परमसुख, एक मूसलाधार बारिश के समान होता है या फिर कुछ होता ही नहीं, फिर भी अपने में डूबी हुई मेरी आत्मा शांत और स्थिर है। यह तब ही होता है जब मन और चेतना बाहरी रूप में अपना चलन दिखाती है। यह ऐसा लगता है जैसे दो चीज़े एक साथ हो रही हों और पार्श्वभूमि में प्रबल 'मैं' या आत्मा को बाहरी खेलों से कोई लेना–देना नहीं है। थोड़ी देर इधर–उधर नृत्य करने के बाद, चेतना अपने आप शांत हो जाती है। लेकिन मैं सदैव ही परमानंद से भरपूर कभी उनको देखता हूँ या पूरी तरह नज़र अंदाज कर देता हूँ। मुझे सिर्फ एक ही इच्छा होती है और वह है दृष्टि को नीचा करके वहाँ स्थिर हो जाना। परमानंद की भावनाएँ ऐसी महसूस होती है जैसे लहरे उठकर फिर सागर में समा जाती हैं। किसी को यह नहीं पता कि वह कैसे उठती या गिरती है और मुझे यह भी जानकारी नहीं है कि यह लहरे कैसा रूप लेती जाएगी।

जागना

देखने के नज़रिए में भारी बदलाव है। मैं अब मुक्त होकर घूम रहा हूँ। सच कहूँ तो जब से ज्ञानी की आत्मकथा इंटरनेट पर डाली है तब से विचार तो कुछ दिनों से ज़्यादा हैं। विचार जिनसे जुड़ना चाहते हैं उन पर मैं ध्यान नहीं देता। यह वह समझ है जो कहती है यह सब अब कुछ महत्वपूर्ण नहीं हैं लेकिन मन–शरीर इसमें स्वयं ही ऑटो पायलट की तरह जुड़ जाते हैं। बुद्धिमत्ता यह सब करती है इसमें मेरी कोई इच्छाशक्ति नही है। यह एक चित्रपट जैसा है जहाँ मैं या तो इसे देख सकता हूँ या फिर उसके दौरान सो सकता हूँ। यही सही है कि चेतना को मेरे मन–शरीर के द्वारा जो कुछ भी करना है, वह करे। मेरा स्वाभाविक और ऑटो पायलट सिस्टम इसे गंभीरता से लेता है, जबकि मुझे पता है कि इन सबका कोई महत्व नहीं है। आजकल मैं खुब मुस्कुराता हूँ। यह वैसा ही है कि मेरा सच्चा स्वरूप मन/शरीर की प्रक्रिया में कैद है। मैं कोशिश करता हूँ कि मन/शरीर के तरीकों में अपनी इच्छाशक्ति से कोई परिवर्तन न करूँ और उन चीज़ों को ऐसे ही चलने दूँ। लेकिन कई बार मैं अपनी इच्छाशक्ति का प्रयोग करते हुए उन्हें बदलता हूँ। यह मुझे बहुत मजेदार लगता है क्योंकि आखिरकार कुछ भी कोई मतलब नहीं रखता और यह जाानते हुए अगर हम कोई अच्छा बदलाव ला सकते है तो क्यों ने लाएँ। इसमें अगर इच्छाशक्ति की जरूरत है तो फिर क्या खराबी है।

मेरे पास कहने को तो बहुत कम है। कहने को तो जागृत अवस्था में क्या होता है इसके बारे में मेरे पास बहुत कम शब्द हैं, लेकिन जब मैं ऊपर देखता हूँ तो लगता है कि मैंने फिर भी इस बारे में कितने सारे शब्द समेट लिए हैं।

बहुत हफ्तो बाद भी, रहस्योद्घाटन जारी है।

राजीवः

गुरूजी, आजकल मुझे आँखें मूँदकर ध्यान में बैठने की तीव्र इच्छा होती है और उस समय मैं बहुत असहाय हो जाता हूँ। यह भाव मेरी आत्मा पर परमानंद का पूर्ण समर्पण होता है। यह मेरे साथ पूरे दिन रहता है।

मैं इस नशे में पूरा दिन डूबा रहता हूँ। यह एक प्रयत्नहीन समाधि है, मेरे आसपास की हर चीज़ और मेरे अंतर आत्मा की एकात्मता। यह स्वचालित है। यहाँ कोई प्रयत्न नहीं है और परमसुख एक मूसलाधार बारिश के समान बरस पड़ता है। लेकिन इन सबसे ज़्यादा मैं अपनी अवस्था से खुश हूँ, जहाँ मैं कह सकता हूँ कि मुझे कुछ नहीं होता। यह तब होता है जब मैं अपनी दृष्टि नीचे कर विश्राम से पूर्ण जागृत निद्रा में होता हूँ। यह भी स्वचालित है। मैं बस विश्राम और सिर्फ विश्राम करता हूँ।

एडजीः

अति उत्तम।

राजीवः

आजकल साधना बहुत अच्छी हो रही है। आप कह सकते है कि मुझे चेतना की कई बारीकियाँ नज़र आने लगी हैं। वह कई नए रहस्योद्घाटन कर रही है। पूर्णता में यह एक खतरा है लेकिन अपने आप में चेतना बहुत बुद्धिमान है। उसे समझने के लिए समझदारी की जरूरत है जो फिर एक बेकार की कशमकश लगती है। शायद अपनी निद्रित अवस्था में रहना ही सर्वोत्तम है। यह आश्चर्यजनक है गुरूजी कि अगर हम चेतना को अपने आप इधर से उधर नृत्य करने दें और अपना ध्यान स्वयं से भटकने न दें तो सबकुछ आसान हो जाता है।

थोड़ी देर बाद वह अपना नृत्य बंद कर देती है। वह सारी घटनाओं की माता हैं और अपनी पूरी कोशिश करती हैं हमें अपनी ओर आकर्षित करने की और हमें अपने आपसे जोड़ने की। कई बार थोड़ा खेलना ठीक है लेकिन यह कभी नहीं भूलना चाहिए कि वह जो भी दे मुझे अपने सच्चे स्वरूप का कभी भी विस्मरण नहीं करना चाहिए, वह स्वरूप जो इस सबके बीच में भी विश्राम कर रहा है। मैं यह बन जाता हूँ जब माँ चेतना रूक जाती हैं।
राजीवः

गुरूजी, चेतना के वापस आने से पहले, एक तरह की जागरूकता आ जाती है जहाँ कुछ भी महसूस नहीं होता, बाहरी शोरगुल, भावनाएँ, विचार, चित्र इत्यादि। कुछ भी नहीं सिर्फ यह कि मैं हमेशा जागरूक रहता हूँ कि 'मैं हूँ'। समय कैसे बीतता है इसका मुझे कोई अंदाज नही है। समय जैसे अमान्य हो गया हो। मेरे अस्तित्व की जागरूकता है, लेकिन समय के बीतने का कोई अता–पता नहीं है।

अस्तित्व की जागरूकता मेरे पूरे शरीर में फूटते हुए परमसुख के फव्वारे सी होती है, फिर भी उस समय मैं कौन हूँ, क्या हूँ इसकी कोई जानकारी नहीं रहती। मैं कहाँ साधना कर रहा हूँ, किस कमरे में हूँ या ऑफीस में किस अवस्था में हूँ इसकी कोई याद्दाश्त नहीं रहती। एक बार याद्दाश्त वापस आ जाती है तो चंद पल में यह जानकारी मिलती है और मेरे होने का एहसास भी होता है।

लेकिन वह जो थोड़ा समय याद्दाश्त जाने और आने के बीच में लगता है, वह मेरा सच्चा स्वरूप है। वह मैं मेरी मूल अवस्था है जो याद्दाश्त से पहले होती है।

कई बार ऑफीस में दोपहर को मैं बस लेट जाता हूँ और कई बार याद्दाश्त खो बैठता हूँ कि मैं घर पर हूँ या ऑफीस में। कुछ क्षणों तक कोई याद्दाश्त नहीं रहती और फिर लौट आती है। फिर भी मैं जागरूक रहता हूँ। जैसे ही याद्दाश्त वापस आती है मैं चेतन हो जाता हूँ। याद्दाश्त के आने के साथ–साथ एक स्वयं को जानने का यंत्र है जो कहता है कि मैं हूँ। याद्दाश्त का वापस आना मेरे अस्तित्व को फिर उजागर कर देता है।

एडजीः

हाँ, यह एकदम सही है।

राजीवः

मैं मन के होने पर निर्भर हूँ। जब तक मन सूर्य की तरह उजागर नहीं होता मैं नहीं हूँ और न ही यह संसार है। मन के उजागर होने पर उसमें रहना बहुत कठिन है जिसे तुम 'मैं' कहते हो। आखिर मैं तुम्हें बस 'मैं' में रहना ही भाएगा, बाकी सब बेकार धोखाधड़ी लगेगी।

छह हफ्तों बाद भी रहस्योद्घाटन जारी है।

गुरूजी, मैं जो कुछ भी लिख रहा हूँ शायद अपने आपको दोहरा रहा हूँ, लेकिन मैं आपसे कुछ विचार बाँटने को फिर से प्रेरित हो गया हूँ।

गुरूजी, पहले तो साधना बहुत ही मनमोहक है। मैं कभी इतना मोहित नहीं हुआ, जितना अब हो रहा हूँ। कई योगी साधना को एक कर्तव्य मानते हैं। कर्तव्य कई बार एक भारी बोझ बन जाता है। यह सिर्फ हर्ष और परमसुख देती हैं, साधना अतिसुंदर है। यह दैनिक कार्य नहीं है क्योंकि फिर यह उबाऊ हो जाता है। मेरे लिए साधना एक उत्सव है। एक आंतरिक शांति और असीम विश्राम का उत्सव। वह शांति नहीं, जो दो विचारों के बीच का अल्पविराम है, या फिर बाहरी शोर जो रूक जाता है या एक भिन्न भिनाने की आवाज़ जो

सब आवाजों को ढक देती हैं। इनमें से हम किसी को भी शांति नहीं कह सकते। यह वह शांति है जो बिना किसी अनुभव के होने से जन्म लेती है। मैं हमेशा वह अनुभवहीन शांति हूँ।

विचार आकर चले जाएँगे, तारकिय दृश्य भी आकर चले जाएँगे, शोर शुरू होकर बंद हो जाएगा फिर भी मैं उस असीम शांति के रूप में सदैव रहूँगा। क्या मैं कह सकता हूँ कि मैं सोता हूँ? हाँ, क्योंकि कुछ दिन पहले मैंने महसूस किया कि मैं भी खर्राटे लेता हूँ। मैं हमेशा से ही उस नींद से जागरूक था। मैं हमेशा ही जागा हुआ रहता हूँ। मैं उस दौरान पूर्णता से रहता हूँ। फिर भी उस तरह नहीं जैसे मैं जागते हुए होता हूँ। यह एक आश्चर्यजनक बात है कि मैं निद्रा अवस्था में नहीं रहता, मैं तो पूरी तरह जागा हुआ होता हूँ फिर भी सबकुछ रूक जाता है और समय भागता रहता है।

मेरी इच्छा है कि मैं उस जागृत निद्रा से कभी न उठूँ, लेकिन चेतना को कुछ और ही मंजूर है। मेरी शारीरिक जरूरतें मुझे उठने पर मजबूर करती हैं और मैं उस अवस्था से उठ जाता हूँ। चेतना की हर अवस्था से आगे है यह तुरिया जो है हमारी स्वाभाविक अवस्था। यह दो घण्टे साधना के गुज़ारने वाली बात नहीं है, यह अपनी स्वाभाविक अवस्था में दो घण्टे रहने की बात है। पहली तीन अवस्थाएँ तो इस स्वाभाविक अवस्था पर थोपी गई हैं।

यह जानना अत्यंत महत्वपूर्ण है कि यह मेरी जागृत अवस्था में कैसे बदलाव लाएगा। अब पहले जैसे कुछ भी जरूरी नहीं है। इस समय कोई भी चीज़ कैसे महत्वपूर्ण हो सकती है।

यह अलग बात है कि मैं चेतना के तरीकों से खेलता रहता हूँ क्योंकि मुझे पता है कि यह सब खेल है। मैं बहुत मज़े लेता हूँ लेकिन जब याद्दाश्त ही नही रही तो मैं क्या ढूँढ़ने की कामना करूँ। याद्दाश्त तो सिर्फ स्वाभाविक अवस्था की है क्योंकि बाकी सब तो एक खेल है। मैं किसी स्थिति में किसी भी तरह पेश आऊँ, गुस्सा हो जाऊँ, निराश हो जाऊँ, चिल्लाऊँ, हसूँ, लेकिन कुछ भी अगले दिन तक या फिर अगले क्षण तक मेरे पास नहीं रहेगा। मेरा मन/शरीर खेलता है ताकि यह चीज़े मनमोहक लगें, लेकिन बाद में करने वाले चीज़ों की कोई स्मृति नहीं है। यह सब स्थिति पर निर्भर है। दुःख, खुशी, जीवन की परेशानियाँ, गुस्सा, प्यार यह सबकुछ नही है और इनका तब तक अस्तित्व है जब तक स्मृति और समझदारी रहती है। मेरे साथ ये दोनों स्मृति और समझदारी अस्तित्वहीनता का रूप ले रहे हैं।

एडजीः

यह एक महत्वपूर्ण मोड़ है। पाठकों को पता होना चाहिए कि कुछ समय के पश्चात, एक साधक को एक स्थिर अवस्था प्राप्त होती है, यह एक असीम शांति की अवस्था है। कई ऐसे नव अद्वैत हैं, जिनको कभी कोई अवस्था प्राप्त नहीं हुई है और वह इन अवस्थाओं के बारे में निराशाजनक विचार रखते हैं और कहते हैं कि आध्यात्मिक अवस्थाएँ और अनुभव तो आते–जाते रहते हैं। लेकिन सिर्फ समझ ही एक सच्चा मित्र है, जो हमेशा साथ रहती है। फिर भी तुरिया की खामोश उपस्थिति तो हमेशा रहती है और सदैव हमारी मित्र बनकर हमारा साथ देती है। असलियत में तो वह समझ ही है जो किसी साधक के अनुभवों पर निर्भर है, जो आती–जाती रहती है।

राजीवः

हाँ, गुरूजी। यह स्थाई अवस्था हमेशा रहती है और अब किसी और चीज़ से ज़्यादा सत्य लगती है। चेतना तो कपटी और धोखेबाज़ है लेकिन यह स्थाई अवस्था ऐसी नहीं है। यह सदा रहती है। मैं चेतना के साथ खेलता जरूर हूँ, लेकिन उसकी ध्वनि अजीब है। मैं उसके तरीकों को समझने की कोशिश कतई नहीं करता। आपके मार्गदर्शन ने जैसे मुक्ति इस अवस्था से दी है, वह अनमोल है।

साधना के प्रयत्न ही काफी नहीं हैं। गुरू का मार्गदर्शन और उनकी करुणा भी अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। वह तब होता है जब शिष्य का अहम 'मैं' मर जाता है। वह हर तत्व जो राजीव दर्शाता है वह चेतना है और इसलिए झूठ है। ऐसी अवस्था की कल्पना को जहाँ कोई भी तत्व जन्तु या चीज़ महत्व नहीं रखती। क्या साधना के प्रयत्न अकेले ही इस अवस्था को ला सकते हैं? मेरे विचार में तो ऐसा कभी नहीं हो सकता। अपने आपको भूलकर योगी को अपने गुरू की शिक्षाओं पर अपना आत्मसमर्पण करना होगा और करुणा गुरू के द्वारा काम करेगी। सिर्फ एक गुरू ही तुम्हें उस स्थान पर ले जा सकते हैं। गुरू यह बात कभी भी अपने शिष्यों को नहीं बताएंगे। शिष्य अपने आपको भ्रमित करते रहेंगे कि प्रयत्न मात्र से इस अवस्था को प्राप्त किया जा सकता है। और अगर ऐसा होता भी है तो वह सिर्फ कुछ समय तक ही रहेगा।

हर प्रयत्न चेतना की ओर जाने की कोशिश है तो क्या फिर वह तुम्हारे लिए कुछ कर के दिखा सकती है क्या? बहुत से शिष्यों को यही लगता है कि वह इधर उधर कुछ चीज़े पढ़ लेंगे, इस पथ के पीछे जाएँगे, थोड़ा सा प्रयत्न करेंगे और अध्यात्म की ऊँचाईयों को छू कर इस अवस्था को पा लेंगे। शिष्यों को अपने गुरू के चरण कमलों में रहना चाहिए। पूर्ण आत्मसमर्पण यह पहली जरूरत है। प्रयत्न की भी जरूरत है। लेकिन पहली जरूरत तो आत्मसमर्पण ही है जो शिष्यों को बिना प्रयत्न के उस पार ले जाएगा।

दो हफ्ते बात भी रहस्योद्घाटन जारी है।

राजीव :

यह तुरिया की अवस्था ही पूर्ण परमसुख चेतना की अवस्था है। वह तीन अस्थाएं, जागृत, स्वप्न और गहन निद्रा ही तुरिया के भाग है। यह तीन अवस्थाएँ तुरिया से उतरती चढ़ती है। हम जागृत अवस्था में एकात्मता कहते हैं और परमसुख के फव्वारे निद्रा अवस्था में कहते हैं, वह ही तुरिया अवस्था है तो सच्चाई तो यह है कि हम जो भी देखते समझते हैं वह तुरिया है। और इस मायने में ही तुरिया का अस्तित्व है।

लेकिन वह समय जहाँ कुछ भी पता नहीं चलता वह तुरिया के दायरे से भी परे है। यह समयहीन, अनुभवरहित अवस्था कहती है कि तुरिया ही अपने आप में उतरती चढ़ती रहती है और इसलिए मेरा सच्चा स्वरूप एक असीम शांति है जहाँ तुरिया स्वयं ही उतरती चढ़ती है।

एडजीः

यह एक अतिउत्तम सारांश है। निसर्गदत्त खुद ही इससे अच्छा नहीं कह सकते थे।

वह जो इन सबसे परे हैं वह धारणा है, तुम इसे पूर्ण खालीपन जैसे महसूस कर सकते हो, वह सदा रहता है। मेरा मतलब महसूस से वह नहीं है जो हम अपनी इंद्रियों से करते है, बल्कि वह है जो हमारा सहज–ज्ञान है। वह चेतना जैसा कोई ज्ञान नहीं है, 'मैं हूँ' बल्कि वह एक अंश है जिसमें से जागरूकता उजागर होती है।

इसकी उपस्थिति मुझे हमेशा गदगद कर देती है।

राजीवः

अतिसुंदर गुरूजी, सहज–ज्ञान एक सही शब्द है गुरूजी। हाँ, इस अवस्था को बनाए रखना जो मन समझ ही नहीं सकता। यही है सच्ची भक्ति और विश्वास का अर्थ। मन समझ नहीं सकता लेकिन फिर भी हम अनुभव कर सकते हैं।

मैं का शिकार
सफल आत्म–निरीक्षण

एड़ म्यूज़िका

आत्म–निरीक्षण के सही अभ्यास का इतना महत्व है कि मुझे इसके भिन्न तरीकों का वर्णन करने की अलग से जरूरत महसूस हो रही है। इसका सबसे बड़ा कारण यह है कि सफल तरीके बहुत ही सूक्ष्म हैं। एक व्यक्ति असफल आत्म–निरीक्षण बहुत लम्बे समय तक कर सकता है, क्योंकि उसे यह नहीं पता होता कि वह क्या ढूँढ़ रहा है। इसलिए मैं एक अलग तरीके से इन कई प्रयोगों का वर्णन करूँगा। इस आशा में कि एक न एक तरीका उसके काम आ जाएगा, जो इसे अपनाने की तीव्र इच्छा रखते हैं।

आत्म–निरीक्षण के बाद कई लोगों को एकदम से ही 'मैं हूँ' का एहसास होने लगता हैं और कईयों को बहुत देर लग जाती है। आत्म–निरीक्षण करने के लिए या तो प्रतिभा होनी चाहिए या फिर उसे अभ्यास से सीखना चाहिए। मनोचिकित्सा के लिए भी यह सच है। जिसे अंदर की ओर ध्यान केंद्रित करने पर आंतरिक काल्पनिक वस्तुएँ दिखती हैं और वह बातचीत से इस चिकित्सा में अच्छे नतीजे दिखाते हैं। लेकिन जिनके पास यह प्रतिभा नहीं है वह इतनी जल्दी नतीजें नहीं दिखा सकते। फिर भी अगर कोई व्यक्ति चाहे तो वह बार–बार प्रयत्न करके अपने अंदर देखकर मन के काल्पनिक स्थानों को अभ्यास से खोज सकता है।

समस्या खड़ी होती है जब बहुत से लोग 'मैं हूँ' एहसास को महसूस नहीं कर सकते और इसलिए उनके पास शुरूआत में ही कुछ नही होता। वे अपने अंदर देखते हैं तो उन्हें सिर्फ अंधेरा नज़र आता है। या फिर उन्हें इतनी ज़्यादा गुँथी हुआ चीज़ें दिखती हैं, जैसे चमकती बत्तियाँ, विचार, चित्र, याद, शारीरिक एहसास उजागर होती हुई ऊर्जा इत्यादि। उन्हें यह पता ही नहीं होता कि वह 'मैं हूँ' एहसास कौन–सा है या क्या है जिस पर ध्यान केंद्रित करना चाहिए। वे एक भ्रमों और एहसासों के घने जंगल में खो जाते हैं और उन्हें 'मैं' की कोई समझ नहीं होती।

अगर बात यही हो तो, रॉबर्ट ने एक तरीका बताया था। यह पूछने का कि 'मैं कौन हूँ' या 'वह कौन है' जिसे यह विचार आते हैं या यह चीज़े होती हैं। यह तरीका आखिर में तुम्हें साक्ष्य की ओर ले जाते है। इसमें एक ही कमज़ोरी है कि यह तरीका मन और विचारों के स्तर तक ही सीमित हैं और इसमें मन और विचारों के दायरे से बाहर आना बहुत जरूरी है।

इस तरीके की दूसरी कमज़ोरी यह है कि तुम जब साक्ष्य करना सीख लेते हो तो कोई भी विचार मैं विचार को मिलाकर, शून्यता की ओर ही जाते हैं। सभी विचार शून्यता से आते हैं और शून्यता में ही वापस समा जाते हैं। कोशिश करके देखो। हर व्यक्ति के सामने विचार अलग तरीकों से प्रकट होते हैं, लेकिन वह हर रूप में उस शून्यता / खालीपन / पार्श्वभूमि से ही उजागर होते हैं और उसी तेज़ी से उसमें समा जाते हैं। यह फिर भी स्पष्ट तब तक नहीं होता जब तक आंतरिक संसार इतना नहीं खुलता कि हम अपना अंदरूनी स्थान एक चमत्कार जैसे देख पाऐं।

शून्यता को विचारों का स्रोत और मंजिल समझकर हम स्वयं ही शून्यता बन जाते हैं यह सोचकर कि वह हम ही हैं क्योंकि यही से तो विचार आते हैं और गायब हो जाते हैं या फिर हम शून्यता में देखते रह जाते हैं और उसके स्रोत को ढूँढ़ते रहते है। इसको खोजना है जो उस विचार को देखने वाला है, वह कर्ता मैं, वह देखने वाला, वह खोजने वाला और फिर देखनेवाला बन जाऊँ। वह कर्ता, मैं वह देखने वाला शून्यता नहीं है। वह शून्यता भी देखने वाले के लिए एक दिखने वाली वस्तु है।

यह विचारों के स्रोत (स्रोत) को ढूँढ़ने की एक सबसे बड़ी गलती है क्योंकि कोई व्यक्ति शून्यता में विचारों के आने–जाने को ढूँढ़ सकता है या फिर वह उसे ढूँढ़ने की कोशिश करे जो उस विचार को भाँपने की क्षमता देता है। मुझे इस जाल की अच्छी जानकारी है क्योंकि मैं इस जाल में खुद बहुत सालों तक बंदी था।

इसलिए आत्म–निरीक्षण के मात्र दो पड़ाव हैं – आपके आसपास जो भी घटनाएं हैं उन्हें बारीकी से देखो। आंतरिक घटनाएं जैसे विचार, चित्र और बाहरी घटनाएं जैसे इस संसार और उसकी वस्तुएँ। यह पूरे दिन साधना के दौरान करे और उनपर ध्यान लगाने के बाद इन घटनाओं से खेलो। उनसे पहचान बढ़ाओ और अपने आंतरिक संसार की खोज जारी रखो। फिर अपने आपसे पूछो कि क्या यह रहस्यमयी घटना 'मैं हूँ' या 'मैं' इन सबसे परे हूँ? दरअसल तुम उस बीज कोष एहसास को ढूँढ़ रहे हो जिससे तुम विश्वास के साथ कह सकते हो 'हाँ यह मैं ही हूँ।'

यहाँ, पर हम अनियमितता को खोजने की कोशिश कर रहे हैं, वह जो अपरिवर्तनीय है और दूसरे एहसासों से इसलिए अलग है क्योंकि वह दिखाई देने वाला दृश्य नहीं है बल्कि वह साक्षी है। देखने वाला स्वयं ही है। यह वह ही अगली चीज़ है, जिसके आसपास सारा संसार और उसकी वस्तुएँ समेटी गई हैं।

ऐसे कई दृश्य हैं जो निरीक्षक को 'मैं हूँ' जैसे दिखाई देते हैं। उदाहरण के तौर पर मैं विचार, अहम या वह विशालकाय शून्यता तब अनुभव होती है जब तुम जागरूकता के बहुत करीब होते हो। कई लोगों को विभिन्न विषय देखने के लिए मिल जाते है। कोई साक्षी बनकर विचारों को देखता है और फिर वह इस बात से सजग हो जाता है कि वह विचारों के बहाव को देख रहा है। इसका महत्व है कि साक्ष्य करने के दो पहलू है।

ज़्यादातर जब पहली बार मैं हूँ एहसास होता है तब साधक वास्तव में उस ऊर्जा की ग्रंथि को देख रहे होते हैं, जो शरीर और मन को जोड़कर रखती हैं। उन्हें अभी तक यह नहीं पता होता कि वह इस दृश्य का अंश नही है और उसे मात्र देख रहे हैं और यह कि वह देखने वाला ही वास्तविक 'मैं' हूँ। वह देखने वाला या साक्षी अपने इतने पास है कि हम कई बार इसे अनदेखा कर देते हैं, ऐसा अद्वैत की 'द टेन्थ इंडियन' (The Tenth Indian) भी कहती है। कई बार देखने वाले पर ध्यान इसलिए भी नहीं जाता क्योंकि वह कोई वस्तु नहीं है, इसलिए वही नहीं मिलती।

वास्तव में बहुत सारी शून्यताएँ हैं जैसे–जैसे साधक साधना को विकसित करता है, वैसे–वैसे शून्यता के प्रकटीकरण में बदलाव आता है। इस विषय में एक अच्छी किताब "Progressive Stages of Meditation on Emptiness". यह खेनपो ग्याटसो रिमपोच ने लिखी है। यहाँ पर यह जानना जरूरी है कि रिमपोचे को स्वयं ही आखिरी दो अवस्थाओं कि जानकारी नहीं है जो उसने उस किताब में लिखी है। और वैसे भी आप भिन्न प्रकार की शून्यताओं और उनसे होने वाले चमत्कारों में इतना मत खो जाना कि तुम मैं हूँ विचार या विषय को ही भुला दो।

इन सारे असत्य 'मैं' का साक्ष्य करना जरूरी है। और इनके साथ खेलने के बाद ही यह पता चलता है कि यह सच में 'मैं' नहीं हूँ। लेकिन 'मैं हूँ' विचार की अनुभूति का महाराज जिक्र करते हैं वह अहम की ग्रंथि है जो शरीर को चेतना से जोड़ती है। यह ग्रंथि तुम नही हो, लेकिन यह तुम्हें अपने आप अनुभव करना होगा। यह दूसरों से सीख कर नहीं जाना जा सकता। जिस दिन यह ग्रंथि खुल जाती है सबकुछ स्पष्ट हो जाता है। यह सिर्फ बहुत समय तक ध्यान देखने से ही टूटती है। और फिर यह पता चलता है कि इस ग्रंथि को 'मैं' देख रहा हूँ जो सदा के लिए अमर है। एक दिन तुम जाग जाते हो और उस दिन तुम्हें पता चलता है कि ग्रंथि गायब हो चुकी है। वाह! क्या खोज़ है। उस क्षण में तुम चेतना की पूर्णता को और 'मैं हूँ' की पूर्णता को पहचान लेते हो, यह सबसे पहला जागरण है लेकिन सबसे महत्वपूर्ण नहीं।

आत्म–निरीक्षण एक कभी न खत्म होने वाला पूर्णकालिक कार्य है जो साधना के औपचारिक समय तक सीमित नहीं है।

औपचारिक साधना जब काफी समय तक की जाती है तो आत्म–निरीक्षण की शक्ति बढ़ जाती है। हाँ, और बहुत ज़्यादा साधना मन को मंद और धीमा कर देती है और बहुत साधक यह गलती कर बैठते हैं।

औपचारिक साधना दिन में दो वक्त करनी चाहिए। 25–35 मिनट के दो सत्र जिनके बीच में 5 मिनट का विश्राम हो। इसे धीरे–धीरे बढ़ाकर 3 से 4 सत्रों में बांट देना चाहिए। 35 मिनट से ज़्यादा लम्बे समय का सत्र अपना समय बर्बाद करना होगा। 35 मिनट के सत्र में साधना और भी गहन हो जाती है।

लेकिन आत्म–निरीक्षण की शक्ति के फायदे जो साधना से प्राप्त हुए हैं, क्षीण हो जाते हैं अगर हम बाकी का दिन संसार की सेवा करने में ही गुज़ार देते हैं। एक बार 'मैं हूँ' को अलग करके शिष्यों को दिनचर्या से कई बार हटकर कुछ जान लिया फिर क्षणों के लिए उस 'मैं हूँ' को देखते रहना चाहिए ताकि उसे और बेहतर समझ पाएं। यह आत्म जागरूकता जारी रहनी चाहिए।

फिर यह पता चलेगा कि वह 'मैं हूँ' समय के साथ–साथ बदलता रहता है, क्योंकि 'मैं' का वह असली रूप दिखाई नहीं देता। वह तो सिर्फ एक वस्तु है जो 'मैं' का रूप धारण कर लेती है।

फिर एक दिन वह असंगति भी दिख जाती हैं। वह जो नहीं बदलता जो हर वस्तु में दिख जाता है। जब यह बात स्पष्ट हो जाती है तो हर वस्तु की महत्ता खो जाती है और जिज्ञासु का कार्य सिर्फ इस अवस्था में या फिर उस साक्षी में, बस जाना होता है जिससे इस संसार की हर वस्तु आती है। यह विश्राम की स्थिति है। उस केन्द्र पर रहने के लिए कोई प्रयत्न नहीं करना पड़ता। जिस विश्रामहीन मन को हम जानते हैं उसे हर

समय किसी कार्य की जरूरत होती है और उस दिमाग से जुड़े रहने के कारण हम भी कार्यरत हो जाते हैं, काम लें लग जाते हैं। फिर भी असली 'मैं' तो सदा ही विश्राम करता रहता है और मन का ध्यान हमेशा बार–बार साक्षी पर लाते रहने से, वह कहीं और जाने में रूची खो बैठता है। यह उस विश्राम स्थिति में एक गहन शांति पा जाने के कारण होता है।

एक बार साक्षी मिल जाता है, तो आत्म अनुभूति के लिए एक चौड़ा रास्ता मिल जाता है। झूठे 'मैं' झड़ जाते हैं या धुल जाते हैं। फिर आपका पूर्ण दिन का कार्य सिर्फ इस 'मैं' में बस जाना होता है, जिससे असीम शांति और परमसुख बरसेगा जो तुम्हें बिना किसी प्रयत्न के अपने अंदर पूरी तरह, पूरे रास्ते खींच रखेगा।

यह कैसे करना है उसका विवरण यहाँ दिया हुआ है।

इसमें विचार से बात करने से पहले, हमें यह स्पष्टता से समझना होगा कि हमें बाहरी वस्तुओं पर भी ऐसा ही विश्लेषण लागू करना होगा। किसी भी एक वस्तु को चुनो, जैसे एक व्यक्ति, एक पेड़ या एक घरेलू जानवर जो खिड़की पर बैठा है। उसे ध्यान से देखो और उसी क्षण अपने अंदर 'मैं हूँ' के एहसास को ढूँढ़कर यह देखो कि तुम 'मैं हूँ' एहसास और उस वस्तु में कोई संयोजन देख पाते हो। अगर उस वस्तु में भावनाओं की ऊर्जा है, जैसे कोई प्रियजन तो तुम्हें उस व्यक्ति में और अपने दिल में एक संबंध महसूस होगा जो तुम्हें उससे जोड़ेगा। जब तुम उस हृदय के स्रोत को ढूँढ़ लोगे तो तुम उसमें डूबकर समाने का प्रयत्न कर सकते हो। यह परमानंद और केंद्रियता को बड़ावा देगी जो तुम्हें औपचारिक साधना में मदद करेगा और तीव्रता से तुम्हें मुक्ति की ओर ले जाएगा। फिर तुम्हें यह देखना होगा कि हृदय का स्रोत साक्षी है या नहीं।

आशा है कि यह प्रस्तावना उस प्रक्रिया का पूर्णता से विवरण करता है और अब हम इसे पूरे विस्तार से समझेगे।

आत्म–निरीक्षण का विवरण इन दो किताबों में भी बहुत बारीकी से किया गया है, द पाथ ऑफ श्री रमण भाग–1, लेखक साधू ओम एवं माईकल जेम्स, अध्याय 7 और 8 तथा निसर्गदत्त गीता, लेखक प्रदीप आप्टे। इसमें लगभग 230 वाक्यांश निसर्गदत्त जी ने लिखे हैं जो 'मैं हूँ' एहसास और आत्म–पालन की ओर रोशनी डालते हैं। इनमें द पाथ ऑफ श्री रमण, जो रॉबर्ट ने सिखाया है उससे ज़्यादा मेल खाती है।

आत्म–खोज का रास्ता जो रॉबर्ट, रमण और निसर्गदत्त ने दिखाया है वह है 'मैं हूँ' में रहना। लेकिन आखिर इसका मतलब क्या है? यह 'मैं हूँ' क्या है? मैं इसमें कैसे रहूँ आत्म–निरीक्षण अभ्यास कैसे होगा?

जेम्स की किताब में भी इस आत्म–स्मृति या आत्म–स्थिति का उल्लेख है, हैपीनेस एण्ड द आर्ट ऑफ बीईंग में खासतौर से आखिरी के पन्नों में।

एक और किताब है जो मैं उन्हें पढ़ने को कहता हूँ जिन्में 'मैं हूँ' एहसास का अनुभव नहीं होता, "द मोस्ट रैपिड एण्ड डाइरेक्ट मीन्स टू इटरनल बलिस"

माईकल लिखते हैं कि उन्होंने 27 सालों तक आत्म–निरीक्षण के कई तरीके अपनाएँ लेकिन उन्हें कोई फल प्राप्त नहीं हुआ। वह बिल्कुल उसी स्थान पर थे जहाँ से उन्होंने इस आत्म–निरीक्षण की शुरूआत की थी।

इनके इस अनुभव से मैं एक बात स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि आत्म–निरीक्षण एक जटिल समस्या जैसी है क्योंकि बहुत सारे आंतरिक अनुभवों के जाल में से उस एक विश्राम कर रहे 'मैं' को ढूँढ़ना, बहुत ही कठिन हो सकता है।

यह एक सीधा–साधा उपकरण नहीं है जैसे 'मैं कौन हूँ' सवाल को बार–बार पूंछना। उन्होंने 27 सालों तक आत्म–निरीक्षण का अभ्यास किया था, सारी किताबें पढ़ी थी, बहुत से गुरूओं से मिले थे, फिर भी कहीं नहीं पहुँचे। मैंने भी 20 वर्षों तक यही किया है।

जागृत होने का मतलब सिर्फ यह मालूम करना नहीं है कि अहम नहीं है न कोई मैं–विचार नाम की कोई वस्तु ही है। ये तो सिर्फ शुरूआती अनुभव है।

माईकल कभी इस 'मैं हूँ' एहसास को नहीं पकड़ पाते। उन्होंने एक तरीका बताया और कहा कि जागरूकता से जागरूक होना ही 'मैं हूँ' में रहना है। इस तरीका, जो उन्होंने फिर से ढूँढ़ा है, शिकानतजा कहलाता है जो सोटो ज़ैन साधना की पद्धति है। वे यह मानने से इन्कार करते हैं कि वह शिकानतजा ही है, क्योंकि उनके तरीकों में जागरूकता, जागरूकता को देखती है और आत्म–निरीक्षण करती है, लेकिन वह है तो यही।

शिकानतजा में भी ऐसे ही एकांत में बैठकर सिर्फ जागृत रहते हैं और सजगता के अलावा कुछ नहीं करते। यह आसान काम नहीं है। इसका पालन करने में काफी समय लगता है। मन को स्थिर होकर शांत होना पड़ता है। कई बार इस मन की शांति को पाने में कई साल बीत जाते हैं क्योंकि नए जिज्ञासु त्वरित परिणाम की आकांक्षा करते हैं। अगर उन्हें वे नहीं मिलते तो वे हार मानकर, किसी दूसरे गुरू या नई तकनीक को अपना लेते हैं। नए जिज्ञासुओं को शांति पसंद नहीं है, उन्हें जल्द कार्रवाही चाहिए।

फिर भी जैसा रॉबर्ट ने हमेशा कहा है "डटे रहना ही सबकुछ है"।

एक और महत्वपूर्ण आत्म–निरीक्षण का तरीका यह है कि 'मैं हूँ' विचार को निकाल कर उस जगह बस जाओ। यह कई चीज़ों पर निर्भर है और आसान बिल्कुल नही है। व्यक्तिगत तौर पर मुझे यह तरीका सबसे ज़्यादा पसंद है और मैं इसका विस्तार से विवरण करूँगा।

अगर कोई पहले शिकानतजा का अभ्यास करे और कई सारी समाधियाँ प्राप्त करे तो फिर एक लम्बे अरसे के दौरान वह अपनी मुक्ति ढूँढ़ लेता है। लेकिन फिर भी अभ्यास जारी रखना चाहिए क्योंकि अब तक 'मैं हूँ' जिंदा है उसे खत्म नहीं किया गया है।

'मैं हूँ' तुम्हारे अंदर एक छूटे हुए अंश की तरह रह जाता है। वह समाधि एक खास ऊँची दीवारों के किले जैसी ही बन पाती है। और हम सोचने लगते है कि इसमें से कौन–सी सत्य हे। वह एकात्मता की समाधि या वह जागृति या स्वप्न की अवस्था जिसमें हम हमेशा साधना से लौट आते हैं।

वह ऊँची दीवारें इस मायने में होती है कि समाधि के अनुभव कितने भी क्यों न हों, उनके बाद हम वापस उस इंसानी बंधन में बंध ही जाते हैं और अपने शरीर में लौट आते है।

रमण और निसर्गदत्त ने 'मैं' को शीघ्र मारने का अच्छा तरीका बताया है, वो है 'मैं हूँ' में ही रहना। जब यह हो जाता है तो 'मैं' तो 'मैं' सदा के लिए मर जाता है। शिकानत़जा में शून्यता और चेतना की पूर्णता से बहुत ही जल्दी पहचान हो जाती है। हमें इससे पहचान बढ़ानी नहीं है बल्कि जल्दी से ऊर्जा के केंद्र की ग्रंथि को काट देना है जो मन और शरीर को जोड़ती है। यह ऊर्जा ग्रंथि और गहरी सतहों से भी जुड़ी हुई है जैसे की कारण शरीर के शून्यता के अनुभवों से।

अगर पहले तरीके से मुक्ति मिल जाती है (शिकानतजी लागाफरड) तो फिर इसे सदैव रखने के लिए 'मैं हूँ' को फिर से ढूँढ़ना होगा। अगर कोई सालों तक खालीपन में बह गया है तो उसे यह बहुत ही कठिन लगेगा। स्वयं को ढूँढ़ना मुश्किल हो जाता है। क्योंकि तब तक बार–बार दोहराई हुई शिकानतजा साधना से हम खालीपन से एकात्मता कर चुके होते हैं।

कई लोगों ने मुझे लिखा है कि वह 'मैं हूँ' को कई सालों की साधना के बाद भी नहीं ढूँढ़ पाए हैं। कई लोगों को सालों से खालीपन में रहते हुए गुस्सा आने लगता है क्योंकि इतने सालों में उन्हें कोई खुशी या मुक्ति नहीं मिल पाई है।

इन सबने 'मैं हूँ' को मारने की जटिल प्रक्रिया को छूआ तक नहीं है। इसका मतलब है कि यह 'मैं हूँ' उन लोगों में आज भी जिंदा है। लेकिन वह इसे महसूस नहीं करते क्योंकि उनका ध्यान का केंद्र वह खालीपन है। वह इस खालीपन में खो गए हं और उन्हें कुछ भी हासिल नहीं हो पाया है।

आप प्रक्रिया के क्रम को लाँघ नहीं सकते। अच्छा होगा यदि आप पूर्णता से 'मैं हूँ' को ढूँढ़ने से प्रक्रिया शुरु करें और वह कार्य समाप्त करें। फिर उस दिव्य साक्षी के खालीपन में समा जाना प्रयत्नहीन तथा स्थाई हो जाता है।

मैंने एक बार एक किताब देखी थी जिसका नाम था – हन्टिंग द आय। यह एक बहुत ही सही विवरण है आत्म–निरीक्षण की प्रक्रिया का। हम अपने आंतरिक चमत्कारी संसार में घूम–घूमकर उस 'मैं' को ढूँढ़ते हैं और 'मैं हूँ' अनुभूति को पकड़ लेते हैं।

यह काफी जटिल बात है क्योंकि इसमें 'मैं' शब्द या 'मैं विचार' है जो इस विचारों और चित्रों के जाल का मुख्य केंद्र है, जिसे हम यह वास्तविक संसार समझ लेते हैं। यह 'मैं–विचार' हमारे व्यक्तिगत अस्तित्व के एहसास जैसा नहीं है। यह 'मैं हूँ' विचार से इसलिए अलग है क्योंकि 'मैं हूँ' अनुभूति हमारे शरीर और खासकर हमारे हृदय केंद्र से जुड़ी हुई है या फिर यह किसी खालीपन की तरह हमारे शरीर के पीछे या ऊपर बैठी हुई है।

स्वाभाविक है कि इतनी जागरूकता रखो का मतलब है – हमारे अंदर एक खास योग्यता होनी चाहिए जो इस आंतरिक अनुभव का, दृश्य या तटस्थ निरीक्षण कर सके।

इसका मतलब है कि यह योग्यता हममें अंतरज्ञान के रूप में जन्म से ही या फिर इसे वर्षों के अभ्यास से पायें।

मेरा 'मैं पन' अधिक घना था, इसलिए मुझे वर्षों लग गए। मैं एक तरह से हमेशा ही आत्म'निरीक्षण करता था, और बड़ी आसानी से विचारों और भावनाओं की आंतरिक दुनिया में खो जाता था। लेकिन वह आंतरिक दुनिया कभी भी खुली हुई, विस्तृत नहीं थी। मैंने अपने अंतरमन की अंधेरी दुनिया को अपने तीसरे नेत्र से खोलना सीख लिया था। मैं अपने तीसरे नेत्र पर एक प्रकाश की किरण के प्रति सजग था और फिर पृथ्वी तक नीचे उसका विस्तार करता था। वहाँ से मैं उस प्रकाश को ऊपर और बाहर की ओर विस्तार करता था। यह करने पर एक प्रकाश से पूर्ण काल्पनिक स्थान खुलता था जिसे हम तथाकथित प्रकाशित चेतना कहते हैं। लेकिन मैंने बहुत वर्ष इस प्रकाशित शून्य स्थान में बिता दिए जो अब मेरी सबसे बड़ी समस्या बन गई थी क्योंकि मैं इसे सच्चाई का नाम दे बैठा, बिना यह पहचाने कि मैं अब भी अलग था और शून्यता का साक्ष्य कर रहा था। मैं शून्यता से बहुत दूर था और अज्ञानता से घिरा हुआ था। शून्यता से देखते–देखते सच्चाई को पाने की कोशिश में लगा हुआ थ।

कई सालों के आत्म–निरीक्षण के दौरान ऐसे ढेरों आंतरिक अनुभव होंगे जो हमें 'मैं हूँ' एहसास की गलत पहचान करवाएंगे।

इस आंतरिक जंगल से निकलने का एक ही सफल तरीका है और वह है प्रयत्नशीलता, गहरा अभ्यास, कुछ चुनी हुई किताबों से ज्ञान प्राप्त करना और एक जीवित गुरू का मार्गदर्शन। यही मंजिल तक पहुंचने का सबसे तेज़ और सही तरीका है।

क्या इसके लिए अभ्यास महत्वपूर्ण है? हाँ, सबसे ज़्यादा महत्वपूर्ण।

यहीं पर हंटिंग द आय वाली धारणा काम में लाई जा सकती है।

हम 'मैं हूँ' को ढूँढ़ने के लिए अपने अंतरमन में झाँकते हैं। हर कुछ दिनों या सप्ताहों या महीनों में हमें ऐसा कुछ मिल जाता है, जिसे हम अटूट विश्वास के साथ 'मैं हूँ' मान लेते हैं।

कई बार यह चेतना की स्वयं प्रकाशित रोशनी होती है, कई बार प्रज्वलित, प्रकाशित अंतरिक्षा जैसी आंतरिक शून्यता और कई बार यह पूरी तरह शरीर से जुड़ा हुआ एक एहसास लगता है।

कुछ लोगों को 'मैं हूँ' अपने हृदय केंद्र पर शरीर की आत्म पहचान के एहसास जैसा लगेगा। कई लोग यह भी मानते हैं कि वह शरीर को एक आंतरिक दृश्य एहसास जैसा देखते हैं जो एक वस्तु की तरह काल्पनिक स्थान में दिखता है और इसलिए असत्य है।

वे अपने अंतरमन की सीमितता या अनन्तता को ढूँढ़ लेंगे और फिर सोचेंगे कि वे वही है। वास्तव में ऐसा बिल्कुल नहीं है।

एक साधक इस भ्रम में लगा रहता हैं कि वह 'मैं' को ढूँढ़ निकालेगा, लेकिन एक बार भी यह एहसास नहीं होता कि वह 'मैं' ही तो वह ढूँढ़ने वाला बन गया है।

ढूँढ़ने का वह विषय मिलता नहीं हैं क्योंकि वह कभी भी वस्तु नहीं बन सकता। बाद में यह पता चलता है कि 'वह' जो सबकुछ देख रहा है, अनुभव कर रहा है और समझ रहा है – वास्तव में कर्म (वस्तु) है जिसे (विषय) कर्ता अनुभव कर रहा है, और वह ही है, जो ढूँढ़ा नहीं जा सकता।

यह असफल खोज ऐसे ही कई वर्षों तक जारी रह सकती है, क्योंकि यह कोई चीज़, वस्तुस्थिति या ऊर्जा नहीं है जो खोजी या अनुभव की जा सकती है। अब तक तुम्हें इतना तो समझ में आ ही गया होगा।

फिर क्या किया जा सकता है?

इस क्षण में तुम इस बात से जागरूक हो सकते हो कि ऐसा कुछ है जो आत्म–निरीक्षण की इस प्रक्रिया के प्रति सजग है। वह 'कुछ' ही 'मै' है और सही सबकुछ देखने वाला साक्षी है।

फिर वह 'नया' अभ्यास देखने वाले को देखना हो जाता है न कि कोई शारीरिक अनुभूति या किसी काल्पनिक स्थान में किसी असत्य 'मैं' को खोजना। यह तो देखने वाले को देखना है। तुम देखने वाले की ओर जागरूक हो ही लेकिन यह नहीं जानते कि वह देखने वाले ही असल 'तुम' हो। तुम इस नासमझी में पड़े हो कि देखने वाला 'मैं' को ढूँढ़ लेगा, जब कि वास्तव में वह देखने वाला ही तो 'मैं' है। यहाँ देखने वाला तो पूर्ण है और विश्राम कर रहा है। लेकिन उसे देखना, चाहना, उसकी खोज करना ही तो समस्या है।

इसलिए 'देखने वाले' से दोस्ती कर लो, उससे एक हो जाओ।

तो यह करने की दो सीढ़ियाँ है – पहली दृष्टा का पता करो कि वह देखने वाला ही अनुभूतियों का कर्ता विषय है, यह जानकर उससे खेलो और उसके सभी रूपों को देखो।

फिर इस 'देखने वाले' में आराम से बसने के लिए तनाव रहित, शांत होकर देखने वाले को देखने दो, और 'देखने वाले' दृष्टा ही बन जाओ।

जब तुम्हें यह बात स्पष्टता से समझ में आ जाएगी तब तुम्हें अपने आप में रहने का रास्ता साफ नज़र आने लगेगा। सिर्फ अपने अंतरमन को देखने के एहसास की ओर ध्यान दो। यहाँ गठबंधन, खालीपन, हृदय केंद्र में अनुभूति के एहसास या किसी अनुभव या चमत्कार की कामना में, मत रहो। ये तो 'देखने वाले' को ढूँढ़ने से पहले के पड़ाव या प्रक्रियाएँ हैं, और बहुत ही शुरूआती स्तर पर हैं। फिर उस खोज के बाद अपने 'देखने वाले' विषय में डूब जाओ, और स्वयं ही विषय या कर्ता बन जाओ।

यह बहुत ही आसान लगता है लेकिन वास्तव में 'देखने वाले' को स्पष्टता से ढूँढ़ना बहुत ही मुश्किल हैं क्योंकि हमारा आंतरिक संसार पूर्ण रूप से विचारों, वस्तुओं, अवस्थाओं, शून्यताओं, अनुभवों, खालीपन, ऊर्जाशक्ति और 'मैं हूँ' विचार से भरा हुआ है। यह किताब पढ़कर ही आप अंदाजा लगा सकते है कि यह आंतरिक संसार किस तरह से इन पेचींदा आत्मिक अनुभवों से बना हुआ है और अपने सच्चे स्वरूप को ढूँढ़ निकालना कितना कठिन प्रयास हैं।

तुम्हें यह समझना होगा कि तुम्हें जो प्राप्त होगा और जैसा तुमने अपने आपको सोचा, तुम वैसे नहीं हो, तुम तो वह देखने वाले हो न कि वस्तु प्रक्रिया ऊर्जा या विचारों का एक जटिल मिश्रण जिन्हें तुम इससे पहले 'मैं' सोच बैठे थे।

एक तरह से शुरूआत में 'देखने वाला' सिर्फ एक और आभास जैसा लगता है किसी आंतरिक वस्तु जैसा। लेकिन यह एक भौतिक एहसास नहीं है जैसे विचार आने का एहसास या फिर शरीर के होने का एहसास।

यह अभ्यास ही करना चाहिए कि हम अंदर मुड़े स्रोत की ओर और 'देखने वाले' को ढूँढ़े।

इन चमत्कारी प्रक्रियाओं को परखना, इनसे खेलना और फिर उन्हें पूरी तरह बाहर कर देना 'देखने वाले' के लिए लम्बी या छोटी प्रक्रिया हो सकती है। यह वास्तव में आत्म–निरीक्षण की सही प्रक्रिया है न कि 'मैं कौन हूँ' को बेमतलब दोहराना।

तुम्हारे अनुभव का कोई अंदाजा नहीं है। अलग लोगों को अलग–अलग अनुभव होते हैं। सबके विभिन्न अनुभव होते हैं।

लेकिन आखिरकार तुम समझ जाओगे (देखोगे, अनुभव करोगे, ढूँढ़ोगे, जान जाओंगे) की अंदर या बाहर देखने की कोई जरूरत नहीं है। बस एक ही चेतना सब जगह फैली हुई है। पूरी जिंदगी बाहरी चीज़े देखकर हम अपना ध्यान इन बाहरी वस्तुओं पर ही रखते हैं। इसलिए हमें अंतरमुख्य होकर आत्म–निरीक्षण कर आंतरिक और बाहरी वस्तुओं को निकालकर, मिटाकर अपने सच्चे स्वरूप तक पहुँचना चाहिए।

मुझे यह स्पष्ट करना है कि यह वाक्यांश अंदर की ओर देखना बिल्कुल असत्य है। कुछ भी 'अंदर–बाहर' जैसा नहीं है। यह भिन्नता सिर्फ तब तक है जब तक तुम सोचते हो कि शरीर है। यह वाक्यांश एक आदेश जैसा लगता है 'अंदर की ओर देखो जो हमें अपने शरीर के काल्पनिक स्थानों और खालीपन में देखने पर मजबूर करता है। यह एक बहुत ही गलत निर्देश है। यह तो शरीर के अंदर–बाहर के विचार को वास्तविक बतलाना है, जो है नहीं।

यह संसार तुम्हारी अंतःस्थिति, तुम्हारी कुछ ढूँढ़ने की कोशिश, अपने बारे में तुम्हारी कल्पना – ये सब गायब हो जायेंगे और तुम्हें यह समझ में आ जाएगा कि इस क्षण तक तुम जो भी थे, और जो कुछ भी तुमने अनुभव किया था वह सिर्फ और सिर्फ तुम्हारी कल्पना थी। तुम सारी कल्पनाओं और अनुभवों से मुक्त हो जाओगे। इसमें तुम्हें बहुत समय तक बसे रहना चाहिए, लेकिन यह खुद–ब–खुद बहुत लम्बे समय तक जारी नहीं रहेगा।

यह सिर्फ दृढ़ता से डटे रहने वाली बात है और वह ही तुम्हें उस पार ले जा सकती है। यह दृढ़ता तब आती होती है, जब सत्य की खोज ही तुम्हारे लिए सबसे महत्वपूर्ण हो जाती है।

फिर एक दिन वह सबकुछ जो असत्य है अपने आप गायब हो जाएगा और तुम्हारे पास एक शांतिपूर्ण अस्तित्व ही बचेगा। इसका वर्णन करना कठिन है यह कभी ऐसे गायब नहीं होगा जैसे कि तुम ही अनंत आकाश में तैर रहे हो बल्कि यह संसार एक वस्तु जैसे गायब हो जाएगा।

वह 'मैं' भी एक वस्तु जैसे गायब हो जाएगा। वहाँ सिर्फ एकात्मता होगी और वहाँ एक ही देखनेवाला होगा – इस संसार को और स्वयं को देखनेवाला वह एक ही होगा।

फिर यह भी गायब हो जाएगा। जैसे ही हमें यह एहसास होगा कि इस सारी प्रक्रिया का साक्ष्य पहले ही हो चुका है।

इन सारी – यह शरीर, आत्मा, यह संसार, यह जागृत अवस्था, स्वप्न अवस्था और समझने की प्रक्रिया सभी का ज्ञान हो ही चुका है – उसके ही द्वारा जो कोई वस्तु नहीं है।

इस 'अवस्था' के बारे में कोई कुछ भी नहीं कह सकता, क्योंकि कोई लक्षण ही नहीं दिखते। इसके लक्षण बताना या इस 'अवस्था' का विश्लेषण करना एक साधक को असली अभ्यास से भटकाने जैसा होगा। यह एक अवस्था नहीं है – यह वह है जो सारी अवस्थाओं को देखता है।

अब यह एक तरीका है जो जागने की प्रक्रिया दर्शाता है। माईकल लैगफर्ड, रॉबर्ट और रमण ने अपने तरीकों से इसका वर्णन किया है। इस बात पर ध्यान देना जरूरी है कि इन तीनों ने आखिरी अनुभवों की कोई बात नहीं की है। उन्होंने सिर्फ उन तकनीकों और अद्वैत का विवरण दिया है, जो पूरी तरह से लक्ष्य को काल्पनिक अड़चन में डालकर दुर्बोध बना सकते हैं।

लॉगफर्ड और हर गुरू ने यह ही किया है। उन्होंने सिर्फ भ्रमित करने वाले फलसफे बतालये हैं। कहानियों से अपनी तकनीक के योग–संयोग बताकर उनका अभ्यास करने को कहा हैं।

मुझे भी तुम्हें बहुत दूर तक भ्रमित नहीं करना है। लेकिन यह सारे तरीके जैसा मैंने पहले कहा है, अपने अहम को बढ़ावा देते हैं। और अपने आपमें आखिरी पड़ाव पर पहुँचाने में इनका कोई हाथ नहीं है। लेकिन अभ्यास करना सबके लिए बेहद जरूरी है उनके लिए भी जो कहते हैं कि किसी तरीके या अभ्यास की न ज़रूरत है, न वे संभव ही हैं। पर वे हमें वस्तुस्थिति के फर्क़ को जानने में मदद करते है।

मुझे फिर से यह दोहराने की जरूरत पड़ रही है कि 'मैं हूँ' वह कर्ता तब तक कायम है जब तक 'मैं हूँ' साधना की एक वस्तु रहती है, जैसे कि अपना ध्यान की अहम की ग्रंथि पर लगाना, जो शरीर को मन से जोड़ती है, जिसे कई लोग 'मैं हूँ' समझ लेते हैं।

फिर भी वह असली कर्ता, वह 'मैं' एक वस्तु नहीं है। वह तुम हो, वह साक्षी जो इस संसार के दृश्यों से परे काफी आगे है। वह उस अवस्था में है जहाँ वह सिर्फ देखता है और कुछ करता नही है। वह जीव की विश्राम करने जाने की स्थिति है। यह मन को 'मैं' की ओर ले जाना ही अस्तित्व की सबसे बड़ी कृपा है, क्योंकि 'मैं' ही फिर–फिर हमको लेता है और ढूँढ़ने वाले की खोज को दूर कर देता है। यह 'मैं' बिना किसी गति का शून्य स्थल है और असीम विश्राम की जगह है। इसमें बसे रहने के लिए कुछ करना नहीं पड़ता सिर्फ विश्राम करना होता है। यह अपने कुछ न करने वाले, विश्राम करने वाले स्वरूप का पता लगना है।

'मैं हूँ' में बसना तो कुछ न करने का एक अभ्यास है लेकिन यह सफल भी होता है जब हम वाकई में उस असली 'मैं' के प्रति सजग होते हैं, जो साक्षी है और देखने वाला है। तुम इसके बारे में विश्वास तब ही कर सकते हो जब तुमने इसे समझने में एक लम्बा अभ्यास किया हो और अपने मन की पूरी तरह छानबीन कर ली हो। इस सीखी हुई बुद्धिमानी के बगैर तुम अपना समर्पण किसी दूसरी वस्तु को कर सकते हो जो 'मैं हूँ' के

भेष में तुम्हें मूर्ख बना रहा होगा। उदाहरण के तौर पर ऐसे लोगों बहुत सावधान रहो जो यह कहते हैं कि अभ्यास की कोई जरूरत नहीं है। शून्य स्थल को पाने से पहले कोई अभ्यास न करना तो सिर्फ मूर्खता ही है।

मेरा अपना तरीका : कुछ नहीं करना

रॉबर्ट ने 'मैं कौन हूँ?' वाली आत्म–निरीक्षण की प्रक्रिया इसलिए सिखाई थी क्योंकि लोगों का अपने मन को व्यस्त रखने की जरूरत पड़ रही थी। रॉबर्ट ने जो भी तरीके सुनाए वे शांति की ओर ले जाते हैं। असीम शांति, वह ही नहीं जहाँ परम का रहस्योद्घाटन होता है बल्कि वह ही परम है।

मैंने इन सारे 'तरीको' का सालों तक अभ्यास किया लेकिन मुझे कोई परिणाम नहीं मिले। उनसे मुझे नई समझ और बहुत ही अलग–अलग तरह के अनुभव तो जरूर मिले लेकिन 'मैं' की मृत्यु नहीं हुई। मिलीं तो सिर्फ बहुत सारी छोटी–छोटी दूसरी मौतें।

यह मुझे अवलोकन की ओर ले जाता है। बहुत सारे साधक अंदर की ओर जाने की बजाय अपने अनुभवों में ही मदहोश होते हैं और इनका वर्णन करने में ही अपना समय बर्बाद करते हैं। यह ऐसा लगता है कि वे आत्म–निरीक्षण की क्रिया से ऊब जाते हैं और उसे अपने गुरू के साथ एक बुद्धिजीवियों के वाद–विवाद के रुप में बदल देते हैं। वे अपनी पुरानी असलियत से सगे संबंध को ही चाहते हैं।

लेकिन गुरू तो सिर्फ शिष्यों को उनकी कल्पनाओं और अनुभवों से बहुत परे ले जाना चाहता है। यह समय नष्ट करना है, खास तौर पर वह समय जो लोग दस–बीस साल पुराने अनुभव का मतलब निकालने में लगाते है। यह ऐसा है जैसे कि वे पुनः उसका अनुभव कर सकते हों। यह तो ढूँढ़ने की प्रक्रिया का अंत हो जाना है। कोई भी अनुभव जो दोहराया नहीं जा सकता या बार–बार नहीं होता, वह बेकार है।

रॉबर्ट से मिलने के 1–2 साल बाद ही मैंने अपने आपको पूर्ण रूप से उन्हें समर्पित कर दिया था। मुझे यह गहनता से पता था कि मैं जिस भी तरीके का अभ्यास करूँ वह सिर्फ मन के स्तर तक ही सीमित है और वह मेरे व्यक्तिगत 'मैं' का कभी भी नाश नहीं कर पाएगा। मैं तो सिर्फ अपने अहम को बढ़ावा दे रहा था – जो एक काल्पनिक 'गैस' का मिश्रण है जिसे मैं काल्पनिक स्थान या संसार कहता हूँ।

यह आत्म–समर्पण उस असीम विश्राम की अवस्था तक पहुँचने का एक तरीका है। "मैं हार मानता हूँ भगवान, अब मेरा कुछ नहीं भगवान, सब तुम्हारा ही किया है।"

लेकिन शायद यह भरोसा और आत्म–समर्पण भी मुझे मुक्ति न दे पाया और रॉबर्ट लॉस एंजिलस छोड़कर चले गए। जब वहाँ से रॉबर्ट सेडोना के लिए निकले तो मैंने बहुत अकेला और एकाकी छोड़ दिया गया हूँ ऐसा महसूस किया।

फिर भी रॉबर्ट को वहाँ से सेडोना जाने के लिए मदद करना, उनके सामान की पैकिंग करनी इतनी उलझनों और कार्यों से भरा था कि उस समय शांत होने के लिए मैंने पूरब का पवित्र संगीत सुनना शुरू कर दिया। खासकर मुक्तानंद और योगानंद का संगीत, जिससे मुझे एक असीम शांति मिलती थी। यह मुझ पर जैसे कि थोपा गया था क्योंकि उस समय मुझे आगे क्या करूँ इसका पता ही नहीं चल रहा था। मैं काफी हताश हो गया था और इसके सिवा कुछ और कर भी नहीं सकता था।

मैं सिर्फ सोफे पर लेटा रहता था और घण्टे दर घण्टे दिन–ब–दिन, हफ्ते–दर–हफ्ते उस संगीत की धुनों में बहता चला जाता था। मैं तब चेतना के अंदरूनी और बाहरी हर रूप और नाच और उससे होने वाले संवेगों का खूब मज़े लेता था। मेरे शरीर का काफी तनाव गायब हो जाता था। मुझे ऐसा एहसास हुआ कि मैं अपने आप में ही डूब रहा हूँ। मैंने कुछ भी काम करना छोड़ दिया था। मैं सिर्फ सोता था और सैर के लिए निकल जाता था। मैं धीरे–धीरे एक परमानंद का अनुभव कर रहा था और बहुत खुश था। मैं कुछ नहीं बनता जा रहा था। जैन की शून्यता जैसा नहीं बल्कि एक व्यक्तिगत रूप से उच्चारण के अनंत हर्ष और उल्हास जैसा। मैं अपने अस्तित्व में विश्राम कर रहा था और कुछ न करने की खुशी से अपने अंदर ही खिंचता चला जा रहा था। सिर्फ अपने अंदरूनी और बाहरी चमत्कारों में डूबा रहता था।

फिर एक दिन एक जागरूकता हुई एक बारिश जैसे अनुभव से, जिसका वर्णन मैंने इस साइट पर कहीं और किया है – जिसे मैं अपना पहला जागरण मानता हूँ।

मैं इसकी सिफारिश किसी और के लिए नहीं कर सकता, मुझे पावन संगीत और उच्चारण बेहद पसंद था। मुझे उस संगीत को सुनकर अपने अंदर की शांति और खालीपन में खो जाना भी अच्छा लगता था। इसलिए दूसरे अगर मेरे जैसे हों तो ही इस तरीके से कोई सफलता पा सकता, नहीं तो वे बहुत ही बेचैन हो जाएँगे।

एक और सरल तरीका जो आपके लिए सफलता लाएगा वह यह है कि आप रॉबर्ट की सारे ध्वनिमुद्रित किए संवाद एमपी3 या आईपॉड पर सुनिए। जब भी आपके पास समय हो इन संवादों को सुनिए और पावन संगीत को दूसरे प्लेयर पर लगाकर पृष्ठभूमि के संगीत की तरह सुनते रहिए।

यह वही जागरूकता है, कई गुरूओं ने जिक्र किया है, यह देखना कि अहम की कोई सत्ता नहीं है। यह देखने की बात ही हम वहाँ पहुँचते है जहाँ मालूम पड़ता है चेतना केवल एक ही है। अब कोई बाहरी संसार या मैं नहीं है। कोई अंदरूनी या बाहरी नहीं है। सिर्फ एक चेतना है और यह संसार, जिसे हम कभी जाना करते थे, गायब हो गया है और अब एक धारणा मात्र बन गया है। यह आखिरी जागरूकता तो कतई नहीं है।

रॉबर्ट की सारी बातें और संवाद तुम्हें सिर्फ शांति की ओर ले जाते हैं। उनकी बाते तुम्हें बार–बार शांति में डूबा देंगी। वह संगीत तो परमसुख देगा ही और इन दोनों का मेल तुम्हें पूर्ण विश्राम की स्थिति में ले आएगा जिसमें तुम्हारा अहम और अस्तित्व सदा के लिए घुल जाएगा। ऐसा होने से तुम परमसुख और परमानंद को पा लोगे। सालों का अभ्यास इसके लिए बहुत जरूरी है क्योंकि हमें अपने मन से ही हर चीज़ ढूँढ़ने की या बनाने की आदत सी पड़ गई है। जब ऐसा प्रतीत होता है कि मन ही इस जागरूकता को पाने में काम नहीं आ सकता, तब एक असीम विश्रांति का आभास होता है जो हमें अपनी ही गहराइयों में डूबने और उसके परे जाने में हमारी मदद करता है। इस ही का वर्णन राजीव ने अपनी किताब आटोबायोग्राफी ऑफ ए ज्ञानी में किया है।

वैसे कुछ रेडियो में एक प्रीसेट स्टेशन को लगाया जा सकता है जो रॉबर्ट के किसी एक चुने हुए संवाद को बजा सकता है। शायद तुम्हें उनके बताए हुए तरीकों से जागरूकता चाहिए, जिसमें वह आत्म–निरीक्षण के अभ्यास के बारे में बता रहे हैं।

अगर तुम महान गुरूओं की आत्मकथाऐं पढ़ोगे तो पाओगे कि हर गुरू ने एक भिन्न तरीके का वर्णन किया है। वह तरीका जो उनके अपनाए हुए तरीके से अलग भी हो सकता है क्योंकि वह अपने तरीकों की सीमितता को पहचानते हैं और मेरी तरह यह सोचते हैं कि शायद यह दूसरों के लिए काम नहीं करेगा।

एक तरीका जो मेरे दिल के बहुत करीब है और वह "पीछे की ओर अपने आप में गिर जाना" बहुत सारे लोग इस 'मैं' के एहसास को और 'मैं हूँ' को शरीर की पूर्णता का एहसास समझने लगते है। शुरूआत में यह ऐसा ही लगता है लेकिन वास्तव में यह ऐसा बिल्कुल नहीं होता।

उस एहसास को महसूस कर अपने शारीरिक एहसास से जुड़ जाओ और फिर अपने आपको इस एहसास में पीछे की तरफ गिरते हुए महसूस करो। उन शारीरिक संवेदनाओं में पीछे की ओर गिरते हुए एक विश्राम की स्थिति में आ जाओ। यह तरीका बहुत ही आरामदायक है और स्थिरता देता है।

कई बार तुम्हें, ऐसा लगेगा कि कोई काली परछाई तुम्हारे पीछे है जो तुम्हारी ही विश्रांति की अवस्था है। अगर इसका तुम्हें तीव्र एहसास होता है तो तुम काल्पनिक तौर पर तनावहीन होकर पीछे की ओर डूब जाओ और अंधेरे खालीपन खो जाओ। यह विश्रांति भी वैसी ही होगी।

करीब–करीब ये सारे तरीके बेकार के अनुभव और समझ लगेंगे और ये चले भी जाएंगे। लेकिन वे उस समय तो पृथ्वी को हिला देने वाले अनुभव लगेंगे। इसलिए रूकना मत, चलते चले जाना।

मुझे एक बात स्पष्ट कर देनी है, ये सारे तरीके तुम्हें जागरूकता / मुक्ति / आत्म–एहसास या ऐसा कुछ भी जो तुम इस स्थिति को कहना चाहतो – तुम्हें नहीं देंगे। यह सारे तरीके सिर्फ मस्तिष्क और मन के स्तर तक ही सीमित हैं।

जागरूकता लम्बे अभ्यास से प्राप्त नहीं होती बल्कि ऐसा कह सकते हो कि लम्बा अभ्यास जागरूकता लाने में आपकी मदद करता है।

मेरे ख़याल से निसर्गदत्त जी ने यह बात अच्छी तरह बताई है। उन्होंने कहा कि एक दिन 'मैं हूँ' तुम्हें मुक्त कर देता है।

फिर भी मैं सबसे पहले यह कहूँगा कि आप निसर्गदत्त गीता को डाउनलोड करें इंटरनेट से और छापने के बाद एक किताब के रूप में बना लें। रोज सुबह कुछ वाक्यांश पढ़कर अपने अभ्यास का आरंभ करं। फिर उन शब्दों पर सोच विचार करें और जागृत 'मैं हूँ' एहसास पर ध्यान लगाएं अगर यह जागरूक है तो। यह एक सबसे अच्छी साधना की किताब है जो मुक्ति का एक चौड़ा रास्ता बनाती है।

फोटो

एडवर्ड म्यूज़िका जिन्हें राजीव प्यार से एडजी कहते हैं – क्लीवलैंड ओहायों में पले बड़े हैं जहाँ उन्होंने कैस वेसर्टन यूनिवर्सिटी से बीए फिलॉसफी की पदवी प्राप्त की और बाद में पब्लिक मैनेजमेंट में मास्टर्स डिग्रीहासिल की। वह फिर डैटरोईट चले गए जहाँ उन्होंने डॉक्टरल प्रोग्राम किया इकोनॉमिक्स में वैयन स्टेट यूनिवर्सिटी से।

इस पड़ाव पर आकर उन्होंने बड़ी स्पष्टता से मन से की जाने वाली अकादमिक और विज्ञानी खोज के खालीपन को बूझ लिया। इस दौरान वह सत्य की खोज में लग गए उस समय भी यह जानते हुए कि आत्म–निरीक्षण ही सही रास्ता है। उस समय वह अपने पहले गुरू से मिले रोशी फिलिप कापलेयू।

लम्बी कथा को छोटा करने के लिए, वह लॉस एंजेलिस गए और बहुत सारे ज़ैन गुरूओं से शिक्षा ली जिनमें सासाकी रोंशी, सिऊंग सान सोइनसा, माएज़मा रोशी और टि टाइन अन कुछ जाने माने नाम हैं। उन्होंने यह 1970 के दौरान किया और 1972 में डॉ् टिक टाइन अन और सेऊंग सान से उन्होंने ज़ैन मॅन्क की पदवी प्राप्त की।

उन्होंने 1980 की शुरूआत में पाँच युनिवर्सिटी ऑफ कैलिफौर्निया और कॉलेज ऑफ बुद्धिस्ट स्टडीज में ज़ैन की शिक्षा दी। बीस साल तक उन्होंने कई रिट्रीट किया ज़ेन साधना का अभ्यास किया और ज़ैन पढ़ाया भी।

फिर जो वह ढूँढ़ रहे थे जिसकी, उन्हें बहुत चाह थी, वह जिसको उन्होंने पूर्ण ज्ञान समझ लिया था, जब उन्हें नहीं मिला तो हताश होकर उन्होंने आध्यात्मिक खोज छोड़ दी और एक मनौवैज्ञानिक बन गए। उन्हांने कोस्टा मेसा में सिएरा युनिवर्सिटी से क्लीनिकल साइकोलोजी की पदवी प्राप्त की और 1986 में एक मनोवैज्ञानिक सहायक बन गए । वह मनोवैज्ञानिक हैं और तब से मेडिकल रिपोर्टस लिखते है उनका संवाद करते हैं और रिपोर्टस का परिक्षण करते हैं।

सन 1988 में उनकी मुलाकात रमेश बालसेकर से लॉस एंजिलीस में हुई और तब से वह फिर से अध्यात्म की ओर आकर्षित हुए। इसके तुरन्त बाद वह अपने सच्चे गुरूआं से मिले रॉबर्ट एडम्स लॉस अेनजिलिस में और जीन डन रॉबर्ट और एड की आठ साल लम्बे संबंध उनकी कहानी एड की वेबसाईट http://itisnotreal.com औन उनकी ब्लाग http://itisnotreal.blogspot.com पर मिल जाएगी।

अब एड सॉन फरनान्डो बैली में रहते हैं, वहीं जहाँ कुछ मील दूर पहले रॉबर्ट रहा करते थे।

फोटो
एड म्यूज़िका (एडजी)

फोटो
राजीव कपूर

यह शायद इस पीढ़ी की सबसे महत्वपर्ण आध्यात्मिक दिशा की किताब है। यह संवाद के रूप में लिखी गई है और किसी और किताव जैसी नहीं है क्योंकि यह बड़े ही सरल और स्पष्ट तरीके से आत्म–निरीक्षण का सही पथ दिखाती है – शुरूआत से आखिर तक।

आत्म–निरीक्षण का पथ ज़ैन में एक हजार साल से भी पुराना है, जिसमें इसको अंत 'मैं कौन हूँ?' पद्धति को दर्शाया गया है। आत्म–निरीक्षण सदी के दो सबसे बड़े गुरूओं ने भी अपनाया है, रमण महर्षि और निसर्गदत्त महाराज।

फिर भी इससे पहले कभी भी इस अभ्यास को किसी ने इतनी बारिकी से नहीं दर्शाया है। इसके साथ उस चमत्कार का मानचित्र भी है जो एक साधक ने आध्यात्मिक अनुभवों का वर्णन करता है और जो उसे एक तीव्र मुक्ति के पथ पर ले जाता है।

यहाँ वह दो स्पीकर हैं एड़ म्यूज़िका, चोगए ज़ैन ट्रेडिशन के विश्व गुरू, रॉबर्ट एडम्स के शिष्य, रमण महर्षि के पुत्र और जीन डन के आध्यात्मिक पुत्र जो निसर्गदत्त महाराज की आध्यात्मिक बेटी है और राजीव कपूर एक साधक जिन्हें इन संवादों के दौरान ज्ञान की प्राप्ति हुई।

यह आज तक की लिखी हुई आत्म–निरीक्षण के पथ का सबसे स्पष्ट वर्णन है।